

अन्ताराष्ट्रियमूल्यांकितत्रैमासिकसन्दर्भितशोधपत्रिका

वेदज्योतिष्मती

Vedajyotishmati

संरक्षकाः

प्रो. रामचन्द्रज्ञाः, प्रो. रामदेवज्ञाः,
प्रो. देवेन्द्रमिश्रः, प्रो. शिवाकान्तज्ञाः

प्रधानसम्पादकः

प्रो. हंसधरज्ञाः

आचार्यः, ज्यौतिषविभागः, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्
भोपालपरिसरः।

सम्पादकः

डॉ. आशीषकुमारचौधरी

असिस्टेंट-प्रोफेसर, ज्यौतिषविभागः,
क.जे.सोमैया संस्कृतविद्यापीठम्, मुम्बई।

प्रकाशकः



संस्कृत-अनुसंधान-संस्थानम्, के. एम. टैंक लहेरियासरायः, दरभंगा

सम्पादकमण्डलम्

1 प्रो.बोधकुमारज्ञा:

आचार्य, व्याकरण-विभाग,
क. जे. सोमैया-संस्कृतविद्यापीठ, मुम्बई ।

2 प्रो. हंसधरज्ञा:

ज्योतिष विभाग, आचार्य,
राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, भोपाल परिसर, भोपाल।

3 प्रो. प्रमोदवर्धनकौण्डिल्यायनः,

विभागाध्यक्ष, मीमांसा दर्शन विभाग नेपाल,
नेपाल संस्कृत विश्वविद्यालय, काठमाण्डु, नेपाल ।

4 जूही जेनोजे

आचार्या, दर्शन विभाग,
कोरिया विश्वविद्यालय, सीओल, कोरिया ।

5 डॉ. प्रवेशसक्सेना

पूर्व आचार्या, संस्कृत विभाग,
जाँकिर हुसैन महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय।

पुनर्विक्षणमण्डलम्

1. आचार्यरामदेव ज्ञाः

पूर्व आचार्य ज्योतिष विभाग,
लालबहादुर शास्त्री, राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, दिल्ली ।

2. आचार्य नीलाम्बर चौधरी

आचार्य रामभगत राजीवगांधी महाविद्यालय दरभंगा।

3 आचार्या प्रवेश सक्सेना

आचार्या, जाँकिर हुसैन महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

वर्षम्- AUG 2015

@copy right – Sanskrit Anusandan Sansthan

Email – rsas.kothram@gmail.com, vjvv.rs@gmail.com,

Ph No. 06272-224671, 09619269812, 07506137027 मूल्य-300/

पत्रिका में प्रकाशित लेखों से प्रकाशक का सहमत होना अनिवार्य नहीं है। विवाद का समाधान दरभंगा न्यायालय से ही स्वीकार्य है। लेखों को परिवर्तित, स्वीकृत एवं अस्वीकृत करने का पूरा अधिकार प्रकाशक को होगा। A Trilingual Educational Sanskrit Research Journal Published by the Sanskrit Anusandhan Sansthan, Darbhanga

From letter no-671/2014-15 Place on Rashtriya Sanskrit Anusandhan Sansthan will known as the Sanskrit Anusandhan Sansthan, Darbhanga

6 डॉ. धनञ्जयमणित्रिपाठी

आचार्य, संस्कृत विभाग,
मोदी विश्वविद्यालय, राजस्थान ।

7 डॉ. दिलीपकुमारज्ञा:

विभागाध्यक्ष-धर्मशास्त्र विभाग
कामेश्वर सिंह संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा ।

8 डॉ. राजीवमिश्रः

प्राचार्य, सन्तनागपाल संस्कृतमहाविद्यालय,
एवं शोध संस्थान, सम्पूर्णनन्दसंस्कृत
विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

9 टेल्टो डेल्टेज

आचार्य दर्शन एवं संस्कृति विभाग,
हेल्डमार्ग विश्वविद्यालय, हेल्डनवर्ग, जर्मनी।

10 प्रो. विद्यानन्द ज्ञाः

प्राचार्य,
भोपाल परिसर, भोपाल।

प्रबंधक संपादक

1. श्री पंकज ठाकुर

2. किरण मिश्रा ल.ना. मि.वि दरभंगा।

परापर्शदातृसंपादकः

1. डॉ. रंजय कुमार सिंह

रा. सं. संस्थान, मुम्बई।

सहसंपादिका

1 डॉ गीता दूबे, रा. सं. संस्थान, मुम्बई।

सम्पादकसहायकः

श्रीसत्यनारायणः

सम्पादकीयम्

विदितमेव विदां यत् सुरगीर्यथैव प्राचीनतमा तथैव नवनवोन्मेषशालितया नूतनतमापि अत्र विद्यमानमलौकिकज्ञानगड्गाप्रवाहं विलोक्य को नाम सहृदयो लोकोत्तराह्लादं न विन्दते। ज्ञानगड्गाप्रवाहोऽसावनादिकालादेव वेदपुराणधर्मशास्त्रदर्शनादिग्रन्थमाध्यमेन, विविधमनीषिणां ग्रन्थपत्रिकादिमाध्यमेन चानवरतं लोकं पावयन् वरीवर्ति। तत्रापि शोधपत्रिकाः खलु भवन्ति सहायिका अनुसन्धातृणां कृतेऽनुसन्धानकर्मणि। शोधपत्रिकया ननु वर्धते चिन्तकानां लेखकानां लेखनगतिः। शैक्षणिकगतिविधौ शोधपत्रिकायाः प्रकाशनं भवति नितरामुपयोगीत्यत्र न सन्देहः।

तदत्र देशदेशान्तरगतानां विविधविदुषां संस्कृत-हिन्दी-
 आङ्ग्लभाषोपनिवद्वैर्ज्ञानविज्ञानमयैश्शोधलेखैश्शोभमाना वेदज्योतिष्मतीति-नामधेया त्रैमासिकी
 शोधपत्रिका लोकमाह्लादयन्ति प्राकाश्यमेतीति मोदते मे मनः। तत्रापि ऐषमो वेदज्योतिष्मत्याः
 षष्ठमप्यङ्ग्लप्रसूनं पाठकानां हस्ते सादरं समर्प्यत इति महान् सन्तोषः। आशासेङ्ग्लकोऽयं षष्ठोऽपि
 शोधच्छात्रोपकारी, पाठकानां हृदयाह्लादकारी स्यात्।

अथ चास्याः पत्तिकायाः प्रकाशने मुख्यकारणभूताय सम्पादकाय युवदैवज्ञाय डॉ. आशीषकुमारचौधरीमहोदयाय हृदयेनाशेषं साशीषं धन्यवादं प्रयच्छाम्येव, पत्तिकाया अस्याः प्रकाशने ये खलु विद्वांसो लेखकाः सम्पादकाः प्रकाशनविभागीयाधिकारिणो मुद्रका वा सन्ति प्रत्यक्षाप्रत्यक्षसहायकास्तेषां समेषां कृते हार्द धन्यवादं समर्प्य निवेदयामि च पुनस्तान् यदेवमेव तेऽग्रेऽपि पत्तिकाप्रकाशने सहयोगाय प्रवर्तन्तामिति।

वेदज्ज्योतिष्मतीत्यस्याः पत्रिकायाः सतां प्रियः ।

षष्ठाङ्कोऽपि चिरं लोके भूयाद्वित्तानुरञ्जकः॥

गुणेकपक्षपातिनां सहृदयानां विदुषां शुभाशंसनमपेक्षमाणः-

કેસાણ/સ

(प्रो. हंसधरज्जा:)

प्रधानसम्पादकः

विषयसूची

पृष्ठसंख्या

❖ सम्पादकीयम्	प्रो. हंसधरज्ञा:	3
❖ ईक्षतेर्नाशब्दम्”(ब्रह्मसूत्र – 1-1-5)	प्रो .बोधकुमार ज्ञा	5
❖ वैदिकाग्न्याधानमीमांसा --(द्वितीयभागः)	प्रमोदवर्धनः कौण्डण्यानः	6
❖ ग्रहस्वरूपविमर्शः --(उत्तराधर्मः)	प्रो.हंसधरज्ञा:	9
❖ काव्यशास्त्रम्	डा. स्वर्गकुमारमिश्रः	16
❖ वेदों में स्वास्थ्य चिंतन	डा. अर्चना दुबे	18
❖ भारतीय सामुद्रिक शास्त्र और कीरो के द्वारा हस्तआकारों में साम्य व वैषम्य मत	कविता शर्मा	21
❖ ग्रहणम्	विजयानन्दः अडिगः बि	23
❖ वृत्तेः स्वरूपविचारः	डा.नवीनकुमारमिश्रः	27
❖ सोमनाथ ज्योतिर्लिङ्ग का ऐतिहासिक एवं वास्तुशास्त्रीय विश्लेषण	डा.आशीष कुमार चौधरी	30
❖ काव्यशास्त्र का अनुशीलन	किरण मिश्रा	32
❖ मधुसूदनसरस्वत्याः अभिप्रायस्य श्रीमद्भागवतमूलकत्वप्रतिपादनम्	सुदेष्ना दाशः	35
❖ संस्कृतशिक्षणे भाषायाः कौशलानि	हरिओम	38

दार्शनिक स्तम्भ

ईक्षतेनर्शब्दम्” (ब्रह्मसूत्र - 1-1-5)

प्रो .बोधकुमार ज्ञा

(शब्दार्थ-ईक्षते=वेदान्त में ईक्षण क्रिया का प्रयोग होने के कारण, अशब्दम्=प्रधान(प्रकृति), न=कारण नहीं हो सकता है।)

कपिल मुनि का सांख्य दर्शन जगत का कारण प्रधान को मानता है। प्रधान का दूसरा नाम प्रकृति है। रजस्, सत्, तमस् ये तीन गुण हैं। इन तीनों की समानता वाली स्थिति को प्रधान कहते हैं। यह प्रधान पुरुषार्थ की प्राप्ति के लिए प्रवृत्त होता है यह जड अर्थात् अचेतन है। जैसे अचेतन दूध बछड़े के सामने आने पर गाय के स्तन से स्वतः बहने लगता है। उसी तरह अचेतन प्रकृति भी पुरुष(आत्मा) के सामने भोग और मोक्ष का निष्पादन करती है। पुरुष उदासीन है, अर्थात् उसकी अपनी कोई इच्छा नहीं रहती है। फिर भी प्रकृति के गुणों से सङ्ग होने के कारण पुरुष भोक्ता भाव में बँध जाता है। जब उसे विवेकछाति अर्थात् ये सब सुख दुःख आदि प्रकृति का है - ये भावना जगती है, तब पुरुष मुक्त हो जाता है। यह सांख्यदर्शन का संक्षिप्त सार है। उपर्युक्त सूत्र में सांख्य के अनुसार जो प्रधान (प्रकृति) को मूल कारण नाना गया है, उसका खण्डन किया गया है। सारे दर्शन वेद वाक्यों के अपनी मान्यता के अनुसार व्याख्यायित करते हैं। अपने मत को प्रमाणित करने के लिए वैदिक मन्त्रों का उद्धरण देते हैं। जिन मन्त्रों के जगत् का कारण ब्रह्म को सिद्ध मन्त्रों से सांख्यदर्शन वाले जगत् सिद्ध करते हैं। “ईक्षतेनर्शब्दम्” यह सूत्र कहता है कि वेद मन्त्रों में जहाँ सृष्टि का वर्णन है वह हर जगह “ईक्षति” का प्रयोग हुआ है। ईक्षति का मतलब संकल्प लेना, विचार करना होता है। यह संकल्प या विचार कोई चेतन ही कर पाएगा। प्रधान तो जड है। उसमें यह संकल्प सम्भव नहीं है। ब्रह्म चेतन है, उसी में वेद मन्त्रों के अर्थ की संगति संभव है। जैसे की वेद में मन्त्र है-“तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति तत्त्वेऽसृजत्”(छान्दोग्योपनिषद् ६/२/३)। अर्थात् सृष्टि से पहले सबको ‘सत्’ के रूप में अवधारणा कर संकल्पपूर्वक अग्नि आदि को बनाया गया। संकल्प के अभाव होने से प्रधान को कारण नहीं माना जा सकता। सृष्टि के लिए सर्वज्ञता जरूरी है, ये पहले बताया जा चुका है। प्रधान को सर्वज्ञ भी कहा नहीं जा सकता है। क्योंकि प्रधान में सत्त्व, रजस् और तमस् ये तीनों गुण हैं। इनमें सत्त्व से ज्ञान होता है। गीता में कहा गया है-“सत्त्वात् संजायते ज्ञानम्” अर्थात् सत्त्व गुण से ज्ञान उत्पन्न होता है। किन्तु रजस् और तमस् ज्ञान का बाधक है। इस प्रकार प्रधान में ज्ञान का साधक और बाधक दोनों गुण हैं। अतः वह सर्वज्ञ नहीं है। और भी साक्षी सत्त्व वृत्ति होती है, वही ज्ञान कहलाता है। साक्षी अर्थात् देखनेवाला, समझनेवाला। यह बात अचेतन प्रधान में नहीं है। ये सब ब्रह्म में ही सम्भव है, प्रधान नामक प्रकृति में नहीं।

दूध अचेतन है, फिर भी बछड़े के लिए बहने लगता है। ऐसे ही प्रकृति अचेतन है, फिर भी पुरुष के लिए चेतन सी हो जाती है।
(सांख्यदर्शन)

द्वारा पूर्व के सूत्रों में किया गया है, उन्हीं का कारण प्रधान को

आचार्य, व्याकरण-विभाग, क. जे. सोमेया-संस्कृतविद्यापीठ, मुम्बई।

वैदिकाग्न्याधानमीमांसा-(द्वितीयभागः)

८ प्रमोदवर्धनः कौण्डिन्यायनः

५- श्रौतग्न्याधानम्

गृह्याग्न्याधानं कृत्वा तत्र कर्तव्यानां नित्यपाकयज्ञानामपि अनुष्ठानं कृतवन्तः, श्रौताग्नौ कर्तव्यानामग्निहोत्रादि नित्यकर्मणामनुष्ठाने समर्थाः, वृत्यर्थमक्तिशन्तः प्रतिग्रहादिवृत्या¹ गृहक्षेत्रादेः स्वामित्वं प्राप्तवन्तः सुसमृद्धाः द्विजाः श्रौताग्न्याधानेऽधिकारिणो भवन्ति। श्रौताग्न्याधानाधिकाराय स्वशाखावेद-वेदाङ्गादिशास्त्राणाम् आवश्यकानां परशाखावेदकल्पानामपि यथाविधि अध्ययनमावश्यकं भवति। शालीनानां गृहस्थानां यथाशक्ति अवश्यकर्तव्ये यजनकर्मणि श्रौताग्न्याधानादिकानि कतिचन प्रमुखाणि श्रौतकृत्यानि भवन्ति। अग्न्याधानम्, अग्निहोत्रम्, दर्शपूर्णमासयागः, आग्रयणम्, चातुर्मासस्यागः, निरुद्धपशुबन्धः, सौत्रामणी इत्येतानि श्रौतकर्मणि सप्त हविर्यज्ञसंस्थाः। इति गौतमधर्मसूत्रे कथितमस्ति।² एतेषां श्रौतकर्मणामपि पुरुषसंस्काररूपेण ग्रहणं तत्र कृतमस्ति।

६- श्रौतग्न्याधानेऽधिकारः-

समुचितरूपेण स्वशाखादि-वेद-वेदाङ्गस्य गुरुमुखपूर्वकं वैधमध्ययनं कृतवान् पुरुष एवाग्न्याधानेऽधिकारी भवति। अविद्वाँस्तु जनो न वैदिककर्मण्यधिकारी भवति। धर्ममीमांसासूत्रे भाष्ये चैवाऽप्युक्तम्- ज्ञाते च वाचनं न ह्यविद्वान् विहितोऽस्ति।- इति जैमिनीयधर्ममीमांसासूत्रे-३/८/१८ विद्यावतश् चाऽधानाऽधिकारः सामर्थ्यात्।- इति जैमिनीयधर्ममीमांसासूत्र-शाबरभाष्ये- ६/८/१२ विभवयुक्त एव जनोऽग्न्याधानेऽधिकारी भवति। एतस्मिन् विषये मीमांसाशास्त्रेऽपि विचारः कृतोऽस्ति। तथा चोक्तं शाबरभाष्ये- यः शक्नोति यद्युं तस्य यजेतेति वाचको भवति। इति-३/१/४१, ४२। इत्थं शास्त्रीयाधिकारयुक्तो द्विजातिः शालीनो गृहस्थो यदा गृह्याग्न्याधानं कृत्वा गृह्यसूत्रोक्तानामावश्यकानां सर्वेषां कृत्यानां निर्वहणं कृतवान् भवति, अधिकशक्तियुक्तश्च भवति तदा स श्रौताग्न्याधानं कृत्वा यथाशक्ति अन्यानि श्रौतकर्मणि कुर्यादिति व्यवस्था वेदवेदाङ्गादिशास्त्रविचारादवगम्यते। यः खलु प्रतिवर्षं सोमयागं कर्तुं पर्याप्तेन धनेन सहितो भवति अधिकारसम्पन्नश्च द्विजातिर्भवति स तु श्रौताग्न्याधानमवश्यमेव कुर्यादिति शास्त्रनियमोऽवगम्यते।³ अत एव वेदोक्तेन देवऋणसिद्धान्तेन सोमस्याऽप्यनिर्वाणता गम्यत इति धर्ममीमांसासूत्र उक्तम्- ब्राह्मणस्य तु सोम-विद्या-प्रजमृणवाक्येन संयोगात्।- इति ६/२/३१ गृहस्थ एव वैदिकयज्ञेऽधिकारी भवति। अग्न्याधाने सपत्नीकस्यैव पुरुषस्याधिकारो भवतीति वैदिकयज्ञे सहाधिकार इति सिद्धान्तेनैव सिद्धम्। वेदे “क्षौमे वसानावग्निमादधीयाताम्” इति वचनं च प्राप्यते। तत्र किमेकेन पुरुषेण इदमाधानं कर्तव्यमुत द्वाभ्यामिति संशयमुपस्थाप्य जैमिनीयधर्ममीमांसासूत्रस्य षष्ठाध्याये विचारो विहितः। आधानस्याऽत्र न विधेयता। अत्र दम्पत्योः सहाधिकारेण प्राप्तं द्वित्वमनूद्यते। अत आधानाधिकारिणः पुरुषस्यैकत्वमेवेति निर्णयो भवति। अत एव भार्यहीनस्याऽधानाभावादुपनयनहोमो न श्रौतेऽग्नौ कार्यः, अपितु लौकिक एवेत्युक्तं जैमिनीयधर्ममीमांसासूत्रे- उपनयनादधीत होमसंयोगात्। स्थपतिवल्लौकिके वा विद्याकर्मानुपूर्वत्वात् आधानं च भार्यासंयुक्तम्।- इति- ६/८/११-१३

७- अग्न्याधानस्य कालः-

कस्मिन् वयस्यग्न्याधानं कर्तव्यमिति विषयेऽपि मीमांसाशास्त्रे विचारो विहितः। “जातपुत्रः कृष्णकेशोऽग्नीनादधीत”⁵ इत्यनेन श्रौताग्न्याधानस्य कृत उचितोऽवस्थाविशेषो लक्ष्यते।⁶ कस्मिन्नृतावग्न्याधानं कर्तव्यमिति विषयेऽपि वेदेषु व्यवस्था समुपलभ्यते। ब्राह्मणेन वसन्ते कृतौ, क्षत्रियेण ग्रीष्मे कृतौ, वैश्येन वर्षासु(शरदि वा) कृतावग्न्याधानं कर्तव्यमिति निर्देशो वेदे लभ्यते। तथा हि शतपथब्राह्मणे- ‘ब्राह्मणो वसन्तऽआदधीत... क्षत्रियो ग्रीष्म आदधीत... वैश्यो वर्षासु आदधीत।- इति २/१/३/४’

मीमांसाशास्त्रे “वसन्ते ब्राह्मणोऽग्नीनादधीत, ग्रीष्मे राजन्यः, शरदि वैश्यः”⁷ इति वाक्येन वसन्तादिकालविशिष्टं ब्राह्मणादिकर्तृकमाधानं विधीयत इति सिद्धान्तितम्⁸। वैदिके कर्मणि चान्द्रतारेव ग्राह्यता भवति⁹॥ अग्न्याधानस्य कृते तिथिनक्षत्रयोरपि ब्राह्मणग्रन्थेषु विचारः कृतः प्राप्यते¹⁰। तथा च अग्निष्टोम-सोमयागार्थं सामग्रीसम्पत्तौ अग्न्याधानं कर्तव्यं चेद् यदा कदाचिदपि अग्न्याधानं कर्तुं शक्यत इत्यपि ब्राह्मणग्रन्थे कथितमस्ति¹¹।

८- संकर्षकाण्डे अग्न्याधानविषयको विचारः- मीमांसाशास्त्रस्य सङ्कर्षकाण्डस्य तृतीयाध्यायस्य [जैमिनीयर्थमीमांसासूत्रस्य पञ्चदशाध्यायस्य] द्वितीये पादे वैदिकाग्नि-विषयको विचारो विहितोऽस्ति। अग्निविचारपरकत्वात् तस्य पादस्य अग्निपाद इत्यपि संज्ञा वर्तते। तत्र अग्न्याधानविषयकाः केचन सिद्धान्ताः स्थापिताः सन्ति। ते चाज्ञेन प्रकारेण प्रदर्शयितुं शक्यन्ते-

१- आधाने ब्राह्मौदनिकेऽग्नौ अरणी सन्ताप्य मन्थति, ततो जातोऽग्निर्न सर्वाग्नीनां योनिः, अपि तु गार्हपत्यस्यैव।

२- इतरे अग्नयो न लोकत आधीरेयन् अपितु गार्हपत्यादेव

३- सभ्याऽवस्थ्यौ नाऽहवनीयात् प्रकल्पौ अपितु लोकत एवाऽधेयौ

४- दक्षिणाग्निः न लोकतः कल्प्यः, अपितु सर्वाग्नियोनिभूताद् गार्हपत्यादेव कल्प्यः

५- सर्व एवाग्नयो न धार्याः, अपितु गार्हपत्य एव धार्याः, कर्मोपवर्गे आहवनीयो गार्हपत्यं गच्छेत्, कर्मादौ उद्धरणम्

६- सम्मार्जनवत् प्रतिकर्म आधानं कर्तव्यमिति चेत्र, अजस्रपक्षे सर्वेषामग्नीनां धारणमस्त्येव, अगतश्रियां तु प्रतिकर्म प्रादुष्करणम्।

७- दक्षिणाग्नेषु सकृदेवाधानम्, प्रतिकर्म प्रादुष्करणं च

८- प्रतिकर्म प्रादुष्करणमग्नीनां गार्हपत्यादेव कर्तव्यं नाऽरणितः।¹²

अनेन प्रकारेण धर्ममीमांसासङ्कर्षकाण्डे अग्न्याधानस्य केचन पक्षा विवेचिताः सन्ति।

९-अग्न्याधानस्वरूपम्-

अग्न्याधाने कृत्विग्वरणम्, अरणिकरणम्, सम्भारसम्भरणम्, अग्न्यागारकरणम् इत्यादिकं कृत्वा अरणिप्रयोगेण अग्निं मथित्वा निष्काल्य गार्हपत्ये अग्नेराधानं कर्तव्यम्। ततो देवपित्राहवानादि कृत्वाचातुष्प्राश्यौदनं (ब्रह्मौदनम्) पक्त्वा कृत्विजो भोजयित्वा तस्मिन् दिने पूर्णा रात्रिं यजमानो यजमानपक्त्री च जागरितौ भूत्वा अग्निं रक्षतः। तदनन्तरं श्वोभूते अरुणोदयसमये अध्वर्युनामकं कृत्विग् उक्तमग्निं निर्वाप्य यथाविधि अग्निमन्थनं कृत्वा गार्हपत्याग्ने: आहवनीयाग्नेः, दक्षिणाग्नेश्वाऽधानं वा अग्न्याहितो वाऽपि कथ्यते। शक्ता उक्तांश्वतुर एवाऽग्नीन् निरन्तरं प्रज्वलितान् रक्षन्ति। अशक्तास्तु गार्हपत्याग्निमेव तथा रक्षन्ति। अग्न्यानग्नीन् कार्यकाल एव गार्हपत्यादग्नेर् विहरन्ति।

१०-वैदिकाग्न्याधानरहस्यम्-

वेदमन्त्राणामाधिभौतिकः, आधिदैविकः, आध्यात्मिकश्चाऽर्थो यथा भवति तथैव वैदिकायज्ञस्याऽपि सामान्यतया आधिभौतिकम्, आधिदैविकम्, आध्यात्मिकश्चेति त्रिप्रकारकाणि रूपाणि भवन्ति। वेदस्यार्थो यज्ञे गर्भितोऽस्ति। अत एव यज्ञरहस्यमबुद्ध्वा वेदस्यार्थः सम्यङ् नैव बुध्यते। वेदस्य कतिपयवाक्यान्येवाऽलोच्य वेदार्थज्ञानस्य प्रयासः क्रियते चेत् स सफलीभूतो न भवति। अतः समग्ररूपेण यज्ञरहस्यस्य ज्ञाने प्रयासः कर्तव्यो भवति। श्रौतसूत्रेषु पद्धतिग्रन्थेषु च यज्ञस्य कर्म क्या सामग्र्या केन क्रमेण कथं सम्पादनीयमिति वर्णितं भवति। अतः तेभ्यो ग्रन्थेभ्यो यज्ञस्य बाह्यं स्थूलं रूपमेवाऽवबुध्यते। आव्यन्तरं स्वरूपं बोद्धुं मन्त्रसंहिताया ब्राह्मणग्रन्थस्य च विशिष्टमध्ययनं कर्तव्यं भवति। तत्राऽपि सर्वे विषयाः स्पष्टरूपेण वा प्रतिपादिता न भवन्ति। कश्चित् सङ्केत एव भवति। तस्यैवाऽधारे आन्तरं रहस्यं बोद्धव्यं भवति। शैशिरीय-शाकल-कृष्णवेदसंहिताया मन्त्रैरन्यैर्वचनैश्वाऽग्निः कथं प्रत्यगात्मरूपेण किञ्चिद् बोद्धुं शक्यते। तथा हि-

अग्ने जुषस्व प्रति हर्य तद् वचो मन्द्र स्वधाव ऋतजात सुक्रतो।

यो विश्वतः प्रत्यङ्गसि दर्शतो रण्वः सन्दृष्टौ पितुमाँ इव क्षयः॥¹³

त्वमग्न इन्द्रो वृषभः सतामसि त्वं विष्णुरुरुगायो नमस्यः। त्वं ब्रह्मा रथिविद् ब्रह्मणस्पते त्वं विधर्तः सच्च से पुरन्धया॥ त्वमग्ने राजा वरुणो धृतव्रतस् त्वं मित्रो भवसि दस्म ईङ्गः। त्वमर्यमा सत्पतिर्यस्य सम्भुजं त्वमंशो विदथे देव भाजयुः॥¹⁴ अग्ने नेमिरराँ इव देवाँस्तं परिभूरसि।¹⁵ तमध्वरेष्वीडते देवं मर्ता अमर्त्यम्॥¹⁶ वीः इदं ज्योतिर्हृदय आहितं यत्॥¹⁷ एक एवाऽग्निर्बहुधा समिद्धः॥¹⁸ अग्ने विश्वतः प्रत्यङ्गसि त्वम्॥¹⁹ अरण्योनिहितो जातवेदा गर्भ इव सुभृतो गर्भिणीभिः दिवे दिवे ईङ्गो जागृवद्विर्हविष्मद्विर्मनुष्येभिरग्निः। एतद् वै तत्॥²⁰ त्रिधा प्रणीतो ज्वलनो मुनिभिर्वेदपारगैः। अतः ते तत्त्वमापन्ना यदेकस् त्रिविधः कृतः॥²¹

निष्कर्षः- वेदविहितानां यज्ञानां विषये मीमांसादर्शने विचारविमर्शः कृतोऽस्ति। श्रौतयज्ञानां सम्पादनाय सर्वप्रथमम् अग्न्याधानं कर्तव्यं भवति। श्रौतयज्ञानामाधिभौतिकमाधिदैविकमाध्यात्मिकं च महत्वं वर्तते। मन्त्रसंहिता-ब्राह्मणग्रन्थ-श्रौतसूत्रेषु श्रौताग्न्याधानस्य प्रतिपादनं प्राप्यते। यज्ञस्य महत्वं साकल्येन बोद्धुं मन्त्राणां ब्राह्मणग्रन्थानां यज्ञप्रक्रियायाश्च सूक्ष्मरूपेण विश्लेषणं मननं च कर्तव्यं भवति। मीमांसाशास्त्रेऽप्यग्न्याधानसम्बद्धा अनेके विषया विचार्य निर्णीताः सन्ति। मीमांसाशास्त्रीयविश्लेषणेन श्रौताग्न्याधानसम्बद्धा बहवो विषया अवगन्तुं शक्यन्ते॥

पादटिप्पणी-

1. याजवल्क्यमृतिव्याख्यायाम् बालक्रीडायाम्-१/२२७
2. 'अग्न्याधेयमग्निहोत्रं दर्शपूर्णमासावाग्रयणं चातुर्मस्यानि निरूपयशुबन्धः सौत्रामणीति सप्त हविर्यज्ञसंस्थाः।— गौतमधर्मसूत्रे-१/८/२०
- 3- तस्माद् यदैवैनं कदा च यज्ञ उपनमेदथाग्नी आदधीता।— मा शतपथब्राह्मणे- २/१/३/९
4. मैत्रायणीयसंहितायाम्-१/६/४, द्र- आपस्तम्बश्रौतसूत्रम्- ५/४/१४
5. शाबरभाष्ये(१/३/३) उद्धृतं वचनम् (कृष्णकेशोऽग्नीनादधीतेति श्रुतिः- इति बौद्धायनधर्मसूत्रे-१/३/६, १८ पृष्ठे)
6. यदा जातपुत्रत्वं कृष्णकेशात्वं च यज्ञसीत्यर्थः- मीमांसान्यायप्रकाशव्याख्यायां सारविवेचिन्याम्, २१ पृष्ठे
7. तैतिरीयब्राह्मणे-१/१/२/६
8. ज ध मी सू- २/३/४
9. द्र- जैमिनीयधर्ममीमांसानिर्णीतानां वैदिककृत्यकालानां चान्द्रमाननियतत्वम्, प्रमोदवर्धनः कौण्डन्यायनः, सारस्वती सुषमा, सम्पूर्णनिन्द स वि वि, वाराणसी, ५१ व, १-४ अध्याय।
10. कृतिकास्वग्निमादधीत एता वा अग्निक्षत्रं यत् कृतिकाः, ... एता ह वै प्राच्ये दिशो न च्यवन्ते, ... रोहिण्यामग्नी आदधीत रोहिण्यां ह वै प्रजापतिः प्रजाकामोऽग्नी आदधे स प्रजा असृजत...।- इत्यादि मा शतपथब्राह्मणे २/१/२/१-१९
11. सोमेन यक्ष्यमाणोऽग्नीनादधीत नर्तुं पृच्छेत् न नक्षत्रम्।- शाबरभाष्ये (५/४/१५) उद्धृतं वचनम्।
12. द्र- मीमांसासङ्करकाण्डस्य विश्लेषणात्मकमध्ययनम्, प्रमोदवर्धनः कौण्डन्यायनः, ४१-४२ पृष्ठे
13. ऋग्वेदसंहितायाम्-१/१४४/७
14. तत्रैव- २/१/३,४
15. तत्रैव- ५/१३,६
16. तत्रैव- ५/१४/३
17. तत्रैव- ६/९/६
18. तत्रैव- ८/५८/२
19. तत्रैव- १०/७९/५
20. कठोपनिषदि- २/१/८
21. हरिवंशे-३-३/३३/५

पूर्व मीमांसा –तत्र—विभागाध्यक्ष, वाल्मीकि विद्यापीठ, काठमाण्डु, नेपाल

ग्रहस्वरूपविमर्शः-(उत्तरार्धम्)

क्र प्रो.हंसधरद्वा

1. अथ सूर्यग्रहस्वरूपविमर्शः- ग्रहेषु सूर्यः सर्वप्रधानो ग्रह इत्यत्र न संशयः। अस्य प्राधान्यादेव वेदेऽयं संसारस्यात्मा निगद्यते। यथा - “सूर्य आत्मा जगतस्तथुषश्च”¹ इति। एवं हि ज्योतिषशास्त्रेऽपि सूर्यः कालपुरुषस्य आत्मैव कथितः। यथा महर्षिपराशरो लिखति² - दिवाकरो हि विश्वात्मा इति। एवमेव आचार्यवराहमिहिरोऽपि वृहज्ञातके लिखति³ - “कालात्मा दिनकृत्” इति। एवमेव ग्रहाणां राजत्वादिविभागक्रमे रविं हि राजानं मनुते। यथाऽत्रवृहत्पाराशरहोराशास्त्रे⁴- “राजानौ भानुहिमगू” इति। एवं हि वृहज्ञातकेऽपि⁵ - “राजानौ रविशीतगू” इति। ग्रहा भूवं परितो भ्रमन्तीति प्राच्यानां मतम्। तत्र भूवं परितः शशांकज्ञकविरविकुजेज्यार्किनक्षत्राणाम्⁶ उपर्युपरि कक्षाः सन्तीति हेतोः पृथिव्याश्रतुर्थी कक्षा विद्यते सूर्यस्य। एवं पृथिव्याः सूर्यस्य दूरवर्तित्वं⁷ 684870 योजनमितम्, अस्य कक्षामानम्⁸ 43,31,500 योजनमितम्, विम्बव्यासश्चास्य⁹ 6,500 योजनात्मकस्तथा सूर्यस्य कल्पीयभगणाः¹⁰ 4,32,00,00,000 भवन्ति। होराशास्त्रानुसारं सूर्यग्रहो रक्षयामवर्णश्चतुरस्तरीरः, पित्तप्रकृतिः, अल्पकेशः, मधुसदृशपिङ्गलनयनश्चास्ति। यथा वृहज्ञातके¹¹- मधुपिङ्गलदृक् चतुरस्तत्तुः पित्तप्रकृतिःसविताल्पकचः॥ इतिफलदीपकायां लिखति¹²- पित्तास्थि सारोऽल्पकचश्च रक्षयामाकृतिः स्यान्मधुपिङ्गलाक्षाः। कौसुम्भवासाश्रतुरस्तदेहः शूरः प्रचण्डः पृथुबाहुरक्षः॥ इति॥ सूर्यस्य दिशां स्थानं च निर्दिशँलिखति फलदीपिकाकारः¹³- शैवं धाम बहिः प्रकाशकमरुदेशो रवेः पूर्वदिक्॥ इति अर्थात् सूर्यस्य स्थानं शिवमन्दिरं, प्रकाशितस्थानं तथा मरुदेशोऽस्ति। अयं पूर्वदिशः स्वामी। एवञ्च सूर्यः येषां वस्तूनाम् अधिष्ठाता अस्ति तेषां विषये प्रतिपादयँलिखति फलदीपिकाकारः¹⁴- शैवो भिषङ्गूपतिरथवरकृत्रधानी। व्याघ्रो मृगो दिनपते: किलचक्रवाकः॥ इति अस्यायमाशयः, सूर्यः शिवोपाकस्य, वैद्यस्य, राज्ञः, याज्ञिकस्य, मन्त्रिणः, व्याग्रस्य, मृगस्य तथा चक्रवाकस्याधिष्ठातास्ति। पुनश्च तत्रैव कथितं, सूर्यः क्षत्रियजातिः, सात्विकस्तथा कृष्टुषु ग्रीष्मर्तोरधिष्ठाता ।¹⁵ शरीरे सूर्यस्य दक्षिणाङ्गोपरि विशेषण अधिकारो भवति।¹⁶ ग्रहेषु सूर्यः पापग्रहः, पुरुषसंज्ञकः, अग्नितत्वात्मकस्तथास्याधिष्ठाता रुद्रोऽस्ति। मतान्तरेण सूर्यः पापग्रहो नास्ति किन्तु क्रूरग्रहो विद्यते।¹⁷ अन्नेषु गोधूमान्नस्य, देशेषु कलिंगदेशस्य तथा रक्षेषु माणिक्यस्य सूर्योऽधिष्ठातास्ति।¹⁸ धातुषु ताम्रस्य, वस्त्रेषु केसरवर्णवस्त्रस्य, रसेषु कटुरसस्य सूर्योऽधिष्ठाता अस्ति।¹⁹ एवं सूर्यः शरीरस्य

¹ यजुर्वेदः, सूर्योपस्थानम्, अ. 7, म. 42

² वृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्, ग्रहस्वरूपवर्णनाध्यायः, श्लो.13

³ वृहज्ञातकम् 2/1

⁴ वृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्, ग्रहस्वरूपवर्णनाध्यायः, श्लो.15

⁵ वृहज्ञातकम् 2/1

⁶ सिद्धान्तशिरोमणिः, गोलाध्यायः, भुवनकोशः, श्लो. 2, एवं सूर्यसिद्धान्तः, भूगोलाध्यायः, श्लो. 31

⁷ सिद्धान्ततत्त्वविवेकः, मध्यमाधिकारः, कक्षावर्णनम्, श्लो.232

⁸ सिद्धान्ततत्त्वविवेकः, मध्यमाधिकारः, कक्षावर्णनम्, श्लो.222

⁹ सिद्धान्ततत्त्वविवेकः, मध्यमाधिकारः, कक्षावर्णनम्, श्लो.236 एवं सूर्यसिद्धान्तः, चन्द्रग्रहणाधिकारः, श्लो.1

¹⁰ सिद्धान्ततत्त्वविवेकः, मध्यमाधिकारः, मानाध्यायः, श्लो.94 एवं सूर्यसिद्धान्तः, मध्यमाधिकारः, श्लो.29, 40,

¹¹ वृहज्ञातकम् 2/8

¹² फलदीपिका 2/8

¹³ फलदीपिका 2/15

¹⁴ फलदीपिका 2/17

¹⁵ फलदीपिका 2/24

¹⁶ फलदीपिका 2/25

¹⁷ फलदीपिका 2/27

¹⁸ फलदीपिका 2/28-29

¹⁹ फलदीपिका 2/30-31

दक्षभागे कटिप्रदेशे चिन्हस्य कारको भवति। यथा²⁰ - शेषाणामितरत्र तिग्मकिरणात्मकद्याम्..... इत्यादि।। वृक्षेषु अन्तःसारसमुन्नतवृक्षस्य सूर्योऽधिष्ठातास्ति।²¹ यथोक्तमपि- अन्तःसारसमुन्नतद्वरुणः इति।।

2. अथचन्द्रग्रहस्वरूपविमर्शः - ग्रहेषु सूर्यो यदि दिनकरस्तदा ²²क्षपाकरश्चन्द्र एव। भूवासिनां कृते सूर्यादिनन्तरं चन्द्रमसोरेव प्राधान्यम्। सर्वेषां ग्रहाणामपेक्षया चन्द्रग्रहः पृथिव्याः परमसमीपस्थो ग्रहः। अतोऽस्य प्रभावोऽपि पृथिव्यामस्यां सर्वाधिकः समापतति। चन्द्रस्य पृथिव्या दूरवर्तित्वं²³ 51229 योजनात्मकं 512290 माईलात्मकं वास्ति। अस्य कक्षामानम्²⁴ 3,24,000 मितयोजनात्मकं, 32,40,000 माईलात्मकं वास्ति। चन्द्रविम्बव्यासः²⁵ 480 योजनात्मकः 4800 माईलात्मको वास्ति। कल्पे ब्रह्मदिने वा चन्द्रस्य भगणा²⁶ 57,75,33,36,000 मिताः सन्ति। चन्द्रः विराटपुरुषस्य मनसो जात इति वेदमन्त्रेणवगम्यते। यथा²⁷ - चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्योऽजायत।। इति मन्ये अस्मादेव कारणाद्वोराशास्त्रे चन्द्रः कालपुरुषस्य मन इति कथितम्। यथा महर्षिपराशरः²⁸ - “दिवाकरो हि विश्वात्मा मनः कुमुदबान्धवः” इति। एवमेव वराहमिहिरोऽपि²⁹ - “कालात्मा दिनकृन्मनश्च हिमगुः” इत्यादि। एवमेव राजत्वादिविचारे सूर्यमिव चन्द्रमसम् अपि राजानमेव मन्यते। यथात्र पराशरः³⁰ - “राजानौ भानुहिमगू” इति। अत्र वराहमिहिरोऽपि³¹ - “राजानौ रविशीतगू” इत्युक्तम्। एवं हि चन्द्रः कृशर्वतुलाङ्गो वातकफप्रकृतिको मेधावी, मृदुभाषी, सुन्दरनयनश्चास्ति। यथोक्तमपि वराहमिहिरेण³² - तनुवृत्ततनुर्वहुवातकफः प्राज्ञश्च शशी मृदुवाक् शुभदृक्। इति फलदीपकायां लिखति³³- स्थूलो युवा च स्थविरः कृशः सितः कान्ते क्षणश्चासितसूक्ष्ममूर्धजः। रक्तैकसारो मृदुवाक् सितांशुको गौरः शशी वातकफात्मको मृदुः।। इति चन्द्रस्य दिशां स्थानं च निर्दिशन् लिखति फलदीपिकाकारः³⁴ - दुर्गास्थानवधूजलौषधिमधूस्थानं विधोर्वायुदिक ॥ इति।। अर्थात् चन्द्रस्य तत् स्थानं भवति यत्र दुर्गामन्दिरं भवेत्, यत्र स्त्रीनिवासो भवेत्, यत्र जलं भवेत्, यत्र च औषधीयद्रव्यं स्यात्, तथा यत्र मधु अथवा सुरा भवेत्। एतत् सर्वं चन्द्रस्य स्थानं कथितम्। तथा चन्द्रो वायुकोणस्य स्वामी अस्ति। एवच्च चन्द्रो येषां वस्तुनामधिष्ठाता विद्यते तेषां विषये प्रतिपादयँलिखति फलदीपिकाकारः³⁵ - शास्त्राङ्गनारजकर्षकतोयगाः स्युरिन्दोः शशश्च हरिणश्च बकश्चकोरः।। इति अर्थात् चन्द्रः शास्तुः, अङ्गनायाः, रजकस्य, कृषकस्य, जलीयजीवस्य, शशकस्य, हरिणस्य, बकस्य तथा चकोरस्य अधिष्ठातास्ति। अर्थाच्चन्द्रे बलवति अथवा चन्द्रदशायां एभिः पदार्थेर्जातकस्य प्रष्टुर्वा लाभो भवति। तत्र केन पदार्थेन कस्य कृते लाभः स्यादित्यत्र जातकस्य प्रष्टुर्वा प्रसङ्गानुसारं परिस्थित्यानुसारं वा विवेकपूर्वकं लाभालाभौ वाच्यौ। पुनश्च तत्रैव कथितं, चन्द्रो वैश्यजातिः, सात्विकस्तथा वर्षतर्तरधिष्ठातास्ति।³⁶ शरीरे वामनेत्रे चन्द्रस्य विशेषेणाधिपत्यं भवति।³⁷ ग्रहेषु चन्द्रः स्वभावतः शुभग्रहः कथितः किन्तु क्षीणचन्द्रः पापत्वेन परिगण्यते।³⁸ चन्द्रः स्त्रीग्रहः, जलतत्त्वात्मकस्तथास्याधिष्ठात्री देवी अम्बा (पार्वती) अस्ति। अत्राधिष्ठात्रृदेवकथने एतदेव तात्पर्यं यद्बलवद्धहानुसारं

²⁰ फलदीपिका 2/32

²¹ फलदीपिका 2/37

²² अमरकोपः दिग्वर्गः क्षो. 15

²³ सिद्धान्ततत्त्वविवेकः, मध्यमाधिकारः, कक्षावर्णनम्, क्षो. 231

²⁴ सिद्धान्ततत्त्वविवेकः, मध्यमाधिकारः, कक्षावर्णनम्, क्षो. 220 तथा सिद्धान्तशिरोमणिः कक्षाध्यायः क्षो. 05

²⁵ सिद्धान्ततत्त्वविवेकः, मध्यमाधिकारः, कक्षावर्णनम्, क्षो. 236

²⁶ सिद्धान्ततत्त्वविवेकः, मध्यमाधिकारः, मानाध्यायः, क्षो. 95

²⁷ यजुर्वेदः, पुरुषसूक्तम्,

²⁸ वृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्, ग्रहस्वरूपवर्णनाध्यायः, क्षो. 13

²⁹ वृहज्ञातकम् 2/1

³⁰ वृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्, ग्रहस्वरूपवर्णनाध्यायः, क्षो. 15

³¹ वृहज्ञातकम् 2/8

³² वृहज्ञातकम् 2/8

³³ फलदीपिका 2/09

³⁴ फलदीपिका 2/15

³⁵ फलदीपिका 2/17

³⁶ फलदीपिका 2/24

³⁷ फलदीपिका 2/25

³⁸ फलदीपिका 2/26

तदेवतायां जातकस्य भक्तिर्भवति। तत्र विशेषेण त्रिकोणगृहाभ्यां सम्बन्धितस्य ग्रहस्य देवतायां भक्तिर्भवतीति ध्यातव्रं विज्ञः। अन्नेषु तण्डुलस्य, देशेषु यवनदेशस्य तथा रत्नेषु स्वच्छमुक्तायाश्चन्द्रोऽधिष्ठातास्ति।³⁹ ध्रातुषु कांस्यस्य, वर्णेषु श्वेतवस्त्रस्य तथा रसेषु लावण्यरसस्य चन्द्रोऽधिष्ठाता अस्ति।⁴⁰ अत्रापि आधिपत्यस्य प्रयोजनं निजविवेकेन विचारणीयम्। यथोदाहरणरूपेण द्रष्टव्यमदिम्- जन्मकाले प्रश्नकाले वा यो ग्रहो बलवान् भवेत् स ग्रहो यस्य प्रदेशस्य अधिष्ठाता भवति तस्मिन् प्रदेशे जातकस्य प्रष्टुर्वा विशेषेणाभ्युन्यतिः सम्भाव्यते। यश्च ग्रहो निर्बलः पीडितो वा भवति तत्सम्बन्धिदेशे तस्योत्थानं भवति। एवं हि ग्रहसम्बन्धिं अन्नस्य दानेन सम्बन्धितग्रहस्य शान्तिर्जयते। एवमेव अन्येषामपि पदार्थानां विवेकेन प्रयोजनं चिन्तनीयम्। चन्द्रशशरीरस्य वामभागे शिरोदेशे चिह्नं करोति।⁴¹ वृथेषु लता-वल्लीरूपाणां वृक्षाणामुपरि चन्द्रस्याधिपत्यं भवति।⁴²

3. भौमग्रहस्वरूपविमर्शः -

भूमे: अपत्यः पुमान् भौमः इति नाम्नैव ज्ञायते यद् भौमग्रहः भूमिपुत्रोऽस्ति। अत एव तस्य नामान्तराणि कुजः, भूमिसुतः, भूसुतः, अवनिपुत्र इत्यादीनि प्रथितानि सन्ति। कक्षाक्रमे पृथ्वीतः पञ्चमी कक्षा कुजस्य विद्यते। अर्थात् सूर्यकक्षात् उपरि कुजस्यैव कक्षास्ति। प्राचीनानां मते कुजोऽपि भुवं परितः स्वकक्षायां परभ्रमति। पृथ्वीतः 12,88,139 योजनमिते दूरे अस्य कक्षा⁴³ विद्यते। अस्य कक्षामानम् 81,46,909 योजमितमस्ति⁴⁴। कुजस्य विम्बव्यासः सावयवः 754 मितयोजनात्मकोऽस्ति⁴⁵। अस्य कल्पीयभगणाः⁴⁶ 2,29,68,32,000 एते भवन्ति। होराशास्त्रे आत्मादिविचारे मङ्गलः कालपुरुषस्य सत्त्वमस्ति⁴⁷। राजादिविचारे भौमः सेनापतिरस्ति⁴⁸। आकृत्या कुजग्रहस्तरुणः, क्रूरदृष्टिः, उदारस्वभावः, पित्तप्रकृतिः, चञ्चलस्तथा कृशमध्यभागोऽस्ति। यथोक्तमपि वराहमिहिरेण⁴⁹- क्रूरदृक्तरुणमूर्तिरुदारः पैत्तिकः सुचपलः कृशमध्यः। इति।। एव च कुजस्य तत्र आधिपत्यं भवति यत्र अग्निर्भवति, यत्र चौरा म्लेच्छा वा वसन्ति तथा या च युद्धभूमिर्भवति। कुजोऽयं दक्षिणदिशः स्वामी अस्ति। तद्यथा⁵⁰- चोरम्लेच्छकुशानुयुद्धभूवि दिग्याम्या कुजस्योदिता। इति।। कुजो येषां वस्तुनामधिष्ठाता तेषां विषये प्रतिपादयैलिखति फलदीपिकाकारः⁵¹ - भौमो महानसगतायुधभृत्युवर्णकाराजकुकुटशिवाकपिगृधचोराः॥ इति।। अत्रायमाशयः, मङ्गलो महानससम्बन्धिकार्यस्य तथा महानसस्य, शस्त्रधारिणः, स्वर्णकारस्य, मेषस्य, कुकुटस्य, शृगालस्य, मर्कटस्य, गृध्रस्य तथा चोरस्य अधिष्ठातास्ति। पुनस्तत्रैव कथितं, कुजः ध्रुत्रियजातिः, तमोगुणी तथा ग्रीष्मतोरधिष्ठातास्ति⁵²। कुजोऽयं पापग्रहः, पुरुषसंज्ञकः, अग्नित्वप्रधानस्तथा अस्य देवता कातिक्योऽस्ति⁵³। असावन्नेषु मसूरस्य, देशेषु अवन्त्यास्तथा रत्नेषु प्रबालस्य अधिष्ठातास्ति⁵⁴। ध्रातुषु ताम्रस्य, वर्णेषु रक्तदग्धवस्त्रस्य तथा रसेषु तिक्तरसस्य अधिष्ठातास्ति⁵⁵। कुजः शरीरस्य पृष्ठप्रदेशे दक्षिणभागस्य अधिपतिः अस्ति⁵⁶। अयं हि वृक्षेषु कण्टकिवृक्षस्य अधिष्ठाता कथ्यते⁵⁷॥।

³⁹ फलदीपिका 2/28-29

⁴⁰ फलदीपिका 2/30

⁴¹ फलदीपिका 2/32

⁴² फलदीपिका 2/37

⁴³ सिद्धान्ततत्त्वविवेकः, मध्यमाधिकारः, कक्षावर्णनम्, क्षो.233

⁴⁴ सिद्धान्ततत्त्वविवेकः, मध्यमाधिकारः, कक्षावर्णनम्, क्षो.222

⁴⁵ सिद्धान्ततत्त्वविवेकः, मध्यमाधिकारः, कक्षावर्णनम्, क्षो.237

⁴⁶ सिद्धान्ततत्त्वविवेकः, मध्यमाधिकारो मानाध्यायः, क्षो.95

⁴⁷ वृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्, ग्रहस्वरूपवर्णनाध्यायः, क्षो.13

⁴⁸ वृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्, ग्रहस्वरूपवर्णनाध्यायः, क्षो.15

⁴⁹ वृहज्ञातकम्, 2/9

⁵⁰ फलदीपिका, 2/15

⁵¹ फलदीपिका, 2/18

⁵² फलदीपिका, 2/24

⁵³ फलदीपिका, 2/28

⁵⁴ फलदीपिका, 2/28-29

⁵⁵ फलदीपिका, 2/30-31

⁵⁶ फलदीपिका, 2/32

4. बुधग्रहस्वरूपविमर्शः

बुधस्यापरं नाम सौम्योऽप्यस्ति। सोमश्वन्दः, तस्य अपत्यः पुमान् सौम्य इति व्युत्पत्या स्पष्टं यद् बुधो हि चन्द्रस्य पुत्रोऽस्तीति। कक्षाक्रमे द्वितीया कक्षा बुधस्यैव। प्राचीनानां मते बुधोऽपि भुवं परितः स्वकक्षायामहर्निंशं पूर्वाभिमुखं परिभ्रमति। पृथ्वीतः 1,64,945 योजनमिते⁵⁸ दूरेऽस्य कक्षास्ति। अस्य कक्षामानं⁵⁹ 10,43,209 योजनमितमस्ति। बुधस्य विम्बव्यासः 145 योजनासन्नः⁶⁰ तथास्य कल्पीयभगणाः⁶¹ 4,32,00,00,000 सन्ति। होराशास्त्रे कालपुरुषस्य वाणी⁶² बुधः कथितः। राजत्वादिविचारे चायं राजकुमारः⁶³ कथितः। बुधग्रहः समाङ्गः (सुन्दरशरीरः) अस्ति। अस्य वपुषः कान्तिर्नूतनदूरवर्णसमा। अयं वातपितकफेतित्रिदोषप्रकृतिकः, सिरावान्, मधुरवक्ता, हास्यप्रियः, त्वक्प्रधानश्चास्ति। तद्यथा⁶⁴-दूर्वालिताश्यामतनुच्चिधातुमिश्रः सिरावान्मधुरोक्तियुक्तः। रक्तायतक्षो हरितांशुकस्त्वक्सारो बुधो हास्यरुचिः समाङ्गः॥। इति॥। अत्रायमाशयः, जन्माङ्गे बुधो यदि पीडितो भवति तदा तस्य दशान्तर्दशादौ कफ-वायु-पित्तेतित्रिदोषोद्भवं रोगं करोति। सिरावनित्यनेन स्नायुमण्डलोऽभिप्रेतोऽस्ति। बुधस्य पीडिते सति जातकस्य नर्वससिस्टम इति विघटितं करोति। बुधस्त्वकप्रधानोऽस्तीति हेतोः सबलेन बुधेन जातकस्य त्वचा स्वस्था भवति। किन्तु पापाक्रान्तेन बुधेन त्वग्रोगः सम्भाव्यते। एवं बुधस्य स्थानं दिशां च निर्दिशैलिखति फलदीपिकाकारः⁶⁵- विद्वद्विष्णुसभाविहारगणकस्थानान्युदीचिं विदुः॥। इति॥। अर्थाद्यत्र विष्णुमन्दिरं स्यात्, यत्र विद्वांसो निवसन्ति, यत्र आमोदप्रमोदो भवति, यत्र गणितकर्तारः / ज्योतिषिकास्तिष्ठन्ति, तत्स्थानं बुधस्य कीर्तितम्। तथा बुध उत्तरदिशाया अधिपतिरस्ति। एवं हि बुधो येषां वस्तूनामधिष्ठाता विद्यते तानि विवेच्यैलिखति फलदीपिकाकारः⁶⁶-गोपज्ञशिल्पगणकोत्तमविष्णुदासा- स्तार्क्ष्यः किंकी दिविशकौ शशिजो विडालः॥। इति॥। अस्यायमाशयः, बुधः गोपस्य, विद्वत्पुरुषस्य, शिल्पिनः, गणितज्ञस्य, विष्णुभक्तस्य, गरुडस्य, शुकस्य तथा विडालस्याधिष्ठाता विद्यते। पुनश्च तत्रैव कथितं यद् बुधः शूद्रवर्णः, रजोगुणप्रधानस्था शरदर्तोरधिष्ठातास्ति⁶⁷। बुधो ग्रहेषु नपुंसकग्रहः, पृथ्वीतत्त्वस्थास्याधिष्ठाता विष्णुरस्ति⁶⁸। अयमेषु मुद्रस्य, देशेषु मगधदेशस्य तथा रत्नेषु मरकतस्य (पन्नाख्यस्य) अधिष्ठाता अस्ति।⁶⁹ धातुषु शीशकस्य, वस्त्रेषु हरितवस्त्रस्य तथा रसेषु मिश्रितरसस्य बुधोऽधिष्ठाता अस्ति।⁷⁰ एवं बुधः दक्षिणभागे कक्षप्रदेशे (दक्षिण काँच) बुधस्याधिपत्यं भवति।

5. बृहस्पतिस्वरूपविमर्शः

बृहस्पतिः पुराणादिषु देवानां गुरुराचार्यो वास्तीति प्रतिपादितम्। अस्माद्वेतोः बृहस्पतिर्गुरुनाम्नाप्यवबुध्यते। पुराणादिषु गुरुर्यं जीव इतिनाम्नापि गीयते। एतेन तत्र जीवानां सम्भवोऽस्तीति आमनन्ति विद्वांसः। प्राचीनानां मते गुरुरपि भुवं परितः परिभ्रमति अहर्निंशं स्वकक्षायाम्। पृथ्वीतः 81,23,221 योजमिते दूरे गुरोः कक्षा⁷¹ अस्ति। अस्य कक्षामानं⁷² 5,13,75,764 योजनमितमस्ति। गुरोर्बिम्बव्यासः⁷³ 8,325 योजनासन्नस्था कल्पीयभगणाः⁷⁴ अस्य 36,42,20,000 सन्ति। होराशास्त्रे

⁵⁷ फलदीपिका, 2/37

⁵⁸ सिद्धान्ततत्त्वविवेकः, मध्यमाधिकारः, कक्षावर्णनम्, क्षो.231

⁵⁹ सिद्धान्ततत्त्वविवेकः, मध्यमाधिकारः, कक्षावर्णनम्, क्षो. 220

⁶⁰ सिद्धान्ततत्त्वविवेकः, मध्यमाधिकारः, कक्षावर्णनम्, क्षो.237

⁶¹ सूर्यसिद्धान्तः, मध्यमाधिकारः, क्षो.29, 40,

⁶² बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्, ग्रहस्वरूपवर्णनाध्यायः, क्षो.13

⁶³ बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्, ग्रहस्वरूपवर्णनाध्यायः, क्षो.15

⁶⁴ फलदीपिका, 2/11

⁶⁵ फलदीपिका, 2/15

⁶⁶ फलदीपिका, 2/18

⁶⁷ फलदीपिका, 2/24

⁶⁸ फलदीपिका, 2/27

⁶⁹ फलदीपिका, 2/28-29

⁷⁰ फलदीपिका, 2/30-31

⁷¹ सिद्धान्ततत्त्वविवेकः, मध्यमाधिकारः, कक्षावर्णनम्, क्षो.233

⁷² सिद्धान्ततत्त्वविवेकः, मध्यमाधिकारः, कक्षावर्णनम्, क्षो. 223

⁷³ सिद्धान्ततत्त्वविवेकः, मध्यमाधिकारः, कक्षावर्णनम्, क्षो.238

⁷⁴ सिद्धान्ततत्त्वविवेकः, मध्यमाधिकारः, मानाध्यायः, क्षो.97

गुरुरात्मादिविचारे कालपुरुषस्य ज्ञानसुखेऽस्तः।⁷⁵ राजत्वादिविचारे चायं सचिवः कथितः।⁷⁶ आकृत्या गुरुग्रहः पीनोन्नतवक्षस्थलः, विशालदेहः, पीतवर्णः, पिङ्गलकेशः, पिङ्गलनयनः, कफप्रधानः, सिंह-शंख-ध्वनिसदृशशब्दकरः, धनप्रधानश्चास्ति।⁷⁷ तद्यथा-पीतद्युतिः पिङ्गलक्षेषणः स्यात्, पीनोन्नतोराश्च बृहच्छरीरः।कफात्मकः श्रेष्ठमतिः सुरेष्यः सिंहाज्जनादश्च वसुप्रधानः॥। इति गुरोर्दिशां स्थानं च विवेचयैल्लिखति फलदीपिकाकारः।⁷⁸ - कोशाश्वत्यसुरद्विजातिनिलयस्त्वैशानदिग्गीष्पतेः॥। इति अर्थाद् गुरोः स्थानं हि कोशागारः, अश्वत्यवृक्षसूतथा देवत्राह्निनिवासस्थानं विद्यते। अयं हि ईशानकोणस्य स्वामी अस्ति। एवं हि गुरुर्येषां पदार्थानामधिष्ठातास्ति तान् स्पष्ट्यैल्लिखति फलदीपिकारः।⁷⁹ - दैवज्ञमन्त्रिगुरुविप्रयतीशमुख्याः, पारावतः सुरगुरोस्तुरगश्च हंसः॥। इति। अस्यायमाशयः, गुरुर्दैवज्ञस्य, मन्त्रिणः, गुरोः, ब्राह्मणस्य, सन्यासिनः, मुख्यपुरुषस्य, कपोतस्य, अश्वत्यस्य तथा हंसस्याधिष्ठातास्ति। पुनश्च तत्रैव कथितम्, बृहस्पतिर्ब्राह्मणवर्णः, सात्विकस्तथा आकाशतत्त्वात्मकोऽस्ति। अस्याधिष्ठाता ब्रह्मा विद्यते।⁸⁰ गुरुरयम् अन्नेषु चणकस्य, देशेषु सिन्धुदेशस्य तथा रत्नेषु गारुदमकस्य (पुखराज इत्याख्यस्य) अधिष्ठाता अस्ति।⁸¹ एवं धातुषु सुवर्णस्य, वन्नेषु पीतवस्त्रस्य तथा रसेषु मिष्ठस्य अधिष्ठाता अस्ति।⁸² गुरुः शरीरस्य दक्षिणभागे चिह्नोत्पादको भवति। तत्रापि दाक्षांसे विशेषेणाधिष्ठिपत्यं भवति गुरोः।⁸³

6. शुक्रग्रहस्वरूपविमर्शः

शुक्रोऽसुराणां गुरुस्तीति हेतो दैत्यगुरुरिति अस्यापरं नाम। प्राचीनानां मते शुक्रोऽपि भुवं परितः स्वकक्षायामहर्निंशं परिभ्रमति। पृथ्वीतः 4,21,316 योजनमिते दूरे⁸⁴ शुक्रस्य कक्षास्ति। अस्य कक्षामानं⁸⁵ 26,64,637 योजनमितमस्ति। शुक्रस्य विम्बव्यासः सावयवः।⁸⁶ 493 योजनात्मकस्तथास्य कल्पभगणा।⁸⁷ 4,32,00,00,000 सन्ति। होराशास्त्रे शुक्र आत्मादिविचारे कालपुरुषस्य मदनः (वीर्यम्)⁸⁸ अस्ति। राजत्वादिविचारे चायमपि गुरुरिव सचिवः।⁸⁹ अस्ति। आकृत्या शुक्रग्रहः स्थूलावयवशरीरः, विचित्रवर्णवस्त्रधारी, कृष्णकुञ्जितकेशः, कपवातप्रधानः, दूर्वाङ्गुकरसदृशोज्ज्वलदेहः, अतिसुन्दरः, विशालनेत्रः, वीर्याधिष्ठितिश्चास्ति।⁹⁰ शुक्रस्य दिशां स्थानं च निर्दिशैल्लिखति फलदीपिकाकारः।⁹¹ - वेश्यावीथ्यवरोधनृत्तशयनस्थानं भृगोरग्निदिक्।। इति अर्थाद्वेश्यागृहं, वीथी, अवरोधस्थानं, नृत्यस्थानं तथा शयनस्थानं शुक्रस्य स्थानं कथ्यते। तथाऽयमग्निकोणस्य स्वामी अस्ति। एवं च शुक्रो येषां पदार्थानामधिष्ठातास्ति तान् स्पष्ट्यैल्लिखति फलदीपिकाकारः।⁹² -गानी धनी विटवणिङ्गनटतन्तुवाय-वेश्यामयूरमहिषाश्च भृगोः शुक्रो गौः॥। इति अस्यायमाशयः, शुक्रो गायकस्य, धनिकस्य वैश्यस्य (व्यापारिणः) नटस्य, तन्तुवायस्य, व्यभिचारिण्याः, मयूरस्य, महिषस्य, शुक्रस्य तथा गोरधिष्ठातास्ति। पुनश्च तत्रैव कथितं, शुक्रो ब्राह्मणवर्णः, रजोगुणप्रधानस्तथा वसन्तोरधिष्ठातास्ति।⁹³ ग्रहेषु शुक्रः शुभग्रहः,

⁷⁵ बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्, ग्रहस्वरूपवर्णनाध्यायः, क्षो.14

⁷⁶ बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्, ग्रहस्वरूपवर्णनाध्यायः, क्षो.15

⁷⁷ फलदीपिका, 2/12

⁷⁸ फलदीपिका, 2/16

⁷⁹ फलदीपिका, 2/19

⁸⁰ फलदीपिका, 2/34

⁸¹ फलदीपिका, 2/28-29

⁸² फलदीपिका, 2/30-31

⁸³ फलदीपिका, 2/32

⁸⁴ सिद्धान्ततत्त्वविवेकः, मध्यमाधिकारः, कक्षावर्णनम्, क्षो.232

⁸⁵ सिद्धान्ततत्त्वविवेकः, मध्यमाधिकारः, कक्षावर्णनम्, क्षो.233

⁸⁶ सिद्धान्ततत्त्वविवेकः, मध्यमाधिकारः, कक्षावर्णनम्, क्षो.233

⁸⁷ सिद्धान्ततत्त्वविवेकः, मध्यमाधिकारः, मानाध्यायः, क्षो.94

⁸⁸ बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्, ग्रहस्वरूपवर्णनाध्यायः, क्षो.14

⁸⁹ बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्, ग्रहस्वरूपवर्णनाध्यायः, क्षो.15

⁹⁰ फलदीपिका, 2/13

⁹¹ फलदीपिका, 2/16

⁹² फलदीपिका, 2/19

⁹³ फलदीपिका, 2/24

र्षीसंज्ञकसृतथा जलतत्त्वात्मकोऽस्ति। अस्य अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मीरस्ति।⁹⁴ अन्नेषु श्याममुद्रस्य, देशेषु कीकटदेशस्य तथा रक्तेषु वज्रस्य शुक्रोऽधिष्ठाता अस्ति।⁹⁵ एवं धातुषु रजतस्य, वस्त्रेषु शुभ्रवस्त्रस्य तथा रसेषु अम्लस्य शुक्रोऽधिष्ठातास्ति।⁹⁶ एवं शुक्रः शरीरस्य वदनांगे वामभागे चिह्नं करोति।⁹⁷ वृक्षेषु लता-वल्लीनां शुक्रोऽधिष्ठातास्ति।⁹⁸

7. शनैश्चरग्रहस्वरूपविमर्शः

यतो हि शनिः सूर्यस्य पुत्रोऽतोऽयं रविसुतोऽपि कथ्यते। ग्रहकक्षासु सर्वतो दूरेऽस्य कक्षा, अतोऽस्य गतिरत्यन्तं मन्दा भवति। अस्मादेव कारणाच्छनिरयं मन्द इत्यपि कथ्यते। अस्य मातुर्नाम छायाऽतोऽयं छायासूनरपि निगद्यते। प्राचीनानां मेत शनिरपि भुवं परितः स्वकक्षायामहर्निंशं परिभ्रमति। पृथ्वीतः 2,01,86,123 योजनमिते दूरे शने: कक्षास्ति।⁹⁹ अस्य कक्षामानं 12,76,68,255 योजनमितमस्ति।¹⁰⁰ शनेर्बिम्बव्यासः¹⁰¹ सावयवः 1776 योजनात्मकसृतथा अस्य कल्पभगणा:¹⁰² 14,65,68,000 सन्ति। होराशास्त्रे शनिरात्मादिविचारे कालपुरुषस्य दुःखं विद्यते।¹⁰³ राजत्वाविचारे शनिर्दासः कथितः।¹⁰⁴ आकृत्या शनिः कृशः किन्तु दीर्घशरीरोऽस्ति। असौ पङ्गुः, निम्ननेत्रः, अलसः, कठोरः, पिशुनः मूर्खः, स्थूलदन्तनखः, कठोराङ्गः, परुषरोमः, अपवित्रः, भयानकः, कुद्धस्वभावः, कृष्णवस्त्रधरः, वृद्धसृतथा तमोगुणी अस्ति। तद्यथा¹⁰⁵-पङ्गुरुनिम्नविलोचनः कृशतनुदीर्घः सिरालोऽलसः।

कृष्णाङ्गः पवनात्मकोऽति पिशुनः स्नाय्वात्मको निर्धृणः।। मूर्खः स्थूलनखद्विजः परुषरोमाङ्गोऽशुचिस्तामसो। रौद्रः क्रोधपरो जरापरिणतः कृष्णाम्बरो भास्करिः।। इतिशनेर्दिशां स्थानं च निर्दिशैलिखति फलदीपिकाकारः¹⁰⁶ – नीचश्रेण्यशुचिस्थलं वरुणदिक्छास्तुः शनेरालयः।। इत अर्थाद् यत्र नीचजना निवसन्ति, अपवित्रस्थलं तथा शास्तुः (देवविशेषस्य) मन्दिरं भवति तच्छने: स्थानं भवति। असौ पश्चिमदिशः स्वामी अस्ति। एवज्च शनिर्येषां पदार्थनामधिष्ठाता भवति तान् स्पष्टैलिखति फलदीपिकाकारः¹⁰⁷ – तैलक्रयी भृतकनीचकिरातकायस्काराश्च दन्तिकरटाश्च पिकाः शने: स्युः।। इतिअस्यायमाशयः, शनिसैलव्यापारिणः, भृत्यस्य, नीचजनस्य व्याधस्य, लौहकारस्य, हस्तिनः, काकस्य तथा पिकस्याधिष्ठातास्ति। शनिर्म्लेच्छजातिः, तमोगुणप्रधान-स्तथा शिशिरर्तरधिष्ठातास्ति।¹⁰⁸ ग्रहेषु शनिः पापग्रहः, नपुंशकसृतथा वायुतत्त्वात्मकोऽस्ति। अस्य अधिष्ठाता यमोऽस्ति।¹⁰⁹ अन्नेषु तिलस्य, देशेषु सौराष्ट्रस्य तथा रक्तेषु नीलस्याधिष्ठाता शनिरस्ति।¹¹⁰ एवं धातुषु लौहस्य, वस्त्रेषु कृष्णजीर्णवस्त्रस्य तथा रसेषु कषायस्य शनिरधिष्ठातास्ति।¹¹¹ शनिः शरीरस्य वामभागे तत्रापि विशेषेण वामपादे चिह्नं करोति।¹¹² शनिः कण्टकिवृक्षस्याधिष्ठातास्ति।¹¹³

⁹⁴ फलदीपिका, 2/27

⁹⁵ फलदीपिका, 2/28-29

⁹⁶ फलदीपिका, 2/30-31

⁹⁷ फलदीपिका, 2/32

⁹⁸ फलदीपिका, 2/37

⁹⁹ सिद्धान्ततत्त्वविवेकः, मध्यमाधिकारः, कक्षावर्णनम्, क्षो.234

¹⁰⁰ सिद्धान्ततत्त्वविवेकः, मध्यमाधिकारः, कक्षावर्णनम्, क्षो.223

¹⁰¹ सिद्धान्ततत्त्वविवेकः, मध्यमाधिकारः, कक्षावर्णनम्, क्षो.239

¹⁰² सिद्धान्ततत्त्वविवेकः, मध्यमाधिकारः, मानाध्यायः क्षोकः 98

¹⁰³ वृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्, ग्रहस्वरूपवर्णनाध्यायः, क्षो.14

¹⁰⁴ वृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्, ग्रहस्वरूपवर्णनाध्यायः, क्षो.16

¹⁰⁵ फलदीपिका, 2/14

¹⁰⁶ फलदीपिका, 2/16

¹⁰⁷ फलदीपिका, 2/20

¹⁰⁸ फलदीपिका, 2/24

¹⁰⁹ फलदीपिका, 2/27

¹¹⁰ फलदीपिका, 2/28-29

¹¹¹ फलदीपिका, 2/30-31

¹¹² फलदीपिका, 2/32

¹¹³ फलदीपिका, 2/37

8. राहुकेतुग्रहस्वरूपविमर्शः

राहुग्रहश्छायाग्रहोऽस्ति। अर्थात् सूर्यादिसप्तग्रहाणामिव नाऽयं बिम्बात्मकः। अस्यापरं नाम तमोऽप्यस्ति। यतो हि सूर्यस्य विरुद्धदिशि षड्भान्तरे पृथिव्याश्छाया भवति। तस्यामेव छायायां यदा चन्द्रः प्रविशति तदा चन्द्रग्रहणं जायते। अर्थाद् भूच्छायारूपं तम एव राहुः, स एव चन्द्रमसं ग्रसति तदा ग्रहणं जायते। अतो भूभा एव राहुरिति सैद्धान्तिकः पक्षः। पौराणिकगाथानुसारं राहुरयं सिंहिकायाः पुत्रः। अतोऽयं सैंहिकेयोऽपि कथ्यते। अर्थाद्सुरविशेषो राहुरब्रह्मवरप्रदानाद् भूभायां प्रविश्य यदा चन्द्रमसं गृह्णाति तदा चन्द्रग्रहणम्। अत एवामरकोशे राहोः पर्यायवाचिशब्दा एवं गदिताः¹¹⁴ -तमस्तु राहुः स्वर्भानुः सैंहिकेयो विधुन्तुदः॥ इति। स्मृतिपुणादौ प्रतिपादितं यत् समुद्रमन्थनादुत्पन्नामृतवितरणसमये राहुणा छ्लेनामृतपानं कृतं येन भगवता विष्णुनाऽस्य कृतं शिरश्छेदनम्। तत एवायं द्विधा विभक्तः सिंहिकातनयो राहुकेतुनामकौ जातौ। अर्थाच्छिद्वर्मस्तकोऽपि केतुः पीतामृतत्वाज्जीवितो मुखपुच्छविभक्तांगको ग्रहत्वं गतः। यथात्र श्रीपतिः¹¹⁵-सिंहिकातनयो राहुरपिवद्वामृतं पुरा। शिरश्छिन्नोऽपि न प्राणैस्त्यक्तोऽसौ ग्रहतां गतः॥ इति अथ सिद्धान्तयुक्त्या राहुकेतु सदैव भषट्कान्तरितौ भवतः। क्रान्तिवृत्तस्य चन्द्रविमण्डलस्य च सम्पातौ पातसंज्ञकौ। तत्र पूर्वसम्पातो (यतः क्रान्तिवृत्ताद्विमण्डलमुत्तरे भवति) राहुः, पश्चिमसम्पातः (यतः क्रान्तिवृत्ताद्विमण्डलं दक्षिणे भवति) केतुरित्यभिधीयते। होराशास्त्रानुसारं राहोः स्वरूपम् एवं विधमस्ति¹¹⁶- राहुर्दीर्घशरीरः, नीलद्युतिः, म्लेच्छजातिः, चर्मरोगी, अधार्मिकः, पाखण्डी, हिक्ररोगी (हिंचकी रोगी) असत्यवादी, कपटी, बुद्धीहीनः, कुष्ठरोगी, तथा परनिन्दकोऽस्ति। यद्यथा - नीलद्युतिदीर्घतनुः कुर्वणः पामी सपाषण्डमतः सहिक्षः। असत्यवादी कपटी च राहुः कुष्ठी परान्निन्दति बुद्धीहीनः॥ इत एवं हि केतोः स्वरूपं विवेचयैल्लिखति फलदीपिकाकारः¹¹⁷ - रक्तोग्रदृष्टिर्विषवागुदग्रदेहः सशस्त्रः पतितश्च केतुः। धूमद्युतिरूपम् एव नित्यं व्रणाङ्किताङ्गश्च कृशो नृशंसः॥ इति। अर्थात् केतुग्रहः रक्तोग्राक्षः, विषवाक्, उन्नतशरीरः, शशधारी, धूमवर्णाभिः, अतिधूम्रपः, व्रणचिह्नदेहः, कुशाङ्गः, क्रूरस्तथा अत्याचारी अस्ति। एवच्च राहो धातुः सीसकमस्ति तथा जीर्णवस्त्रस्यायमधिष्ठाता विद्यते। किन्तु केतुः मृद्घाण्डस्य तथा विविधचित्रवर्णवस्त्रस्याधिष्ठातास्ति।¹¹⁸ तद्यथा - सीसं च जीर्णवस्त्रं तमसस्तु कोतोर्मृद्घाजनं विविधचित्रपटं प्रदिष्टम्। इति वृक्षेषु गुल्मवृक्षानां तथा सालद्रुमानाम् राहुकेतु अधिष्ठातारौ स्तः। एवं राहुकेत्वोर्दिशां स्थानं च निर्दिशँल्लिखति फलदीपिकाकारः¹¹⁹ - वल्मीकाहितमोबिलान्यहिशिखिस्थानानि दिग्ग्रक्षसः॥ इति अर्थाद् यत्र वल्मीको भवेद्, यत्र सर्पवासः स्यात् तथा यत्र तमोमयं छिद्रं भवेत्तत्र राहुकेत्वोः स्थानं भवति। तथा चेमौ नैऋत्यकोणस्याधिपती स्तः। एवं राहुकेतु येषां पदार्थानामधिष्ठातारौ स्तः तान् पदार्थान् स्पष्टयैल्लिखति फलदीपिकाकारः¹²⁰ - बौद्धाहितुण्डिकखराजवृक्षसर्पधान्तादयो मशकमत्कुणकृम्युलूकाः॥ इति अस्यायमाशयः, राहुकेतु बौद्धजनस्य, सर्पजीविनः, गर्दभस्य, अजस्य, मेषस्य, ऊष्ट्रस्य, सर्पस्य, मसकस्य, मत्कुणस्य, कृमिजीवस्य तथा उलूकस्य अधिष्ठारौ स्तः। ग्रहेषु राहुकेतु पापग्रहौ स्तः। अत्र राहुः स्त्रीग्रहस्तथा केतुः कलीबग्रहः कथितः। राहोः अधिष्ठाता सर्पस्तथा केतोः अधिष्ठाता ब्रह्मा विद्यते¹²¹। अन्नेषु माषस्य, देशेषु अम्बरस्य तथा रक्षेषु गोमेदस्य राहुरधिष्ठातास्ति। एवं च अन्नेषु कुलुत्यस्य, देशेषु पर्वतस्य तथा रक्षेषु वैदुर्यस्य केतुरधिष्ठातास्ति¹²²। इत्येवं संक्षेपेण ग्रहस्वरूपविषयको विमर्शः समुपस्थापितोऽत्र। विशदं विवेचनं तु ज्योतिषशास्त्रे द्रुटं शक्यत इति दिक्॥

लेखकसङ्केतः-

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, भोपालपरिसरः, भोपालम्, मध्यप्रदेशः।

¹¹⁴ अमरकोशः, 1/3/26

¹¹⁵ सिद्धान्तशेखरः, राहुनिराकरणाध्याय क्षेत्र 1-3

¹¹⁶ फलदीपिका, 2/33

¹¹⁷ फलदीपिका, 2/33

¹¹⁸ फलदीपिका, 2/35

¹¹⁹ फलदीपिका, 2/16

¹²⁰ फलदीपिका, 2/20

¹²¹ फलदीपिका, 2/26

¹²² फलदीपिका, 2/28-29

काव्यशास्त्रम्

कृ डा. स्वर्गकुमारमिश्रः

“प्रवृत्तिर्वा निवृत्तिर्वा नित्येन कृतकेन वा । लोको येनोपदिश्येत तच्छास्त्रमभिधीयते ॥” अर्थात्, सदसत्प्रवृत्तिनिवृत्तिकारणीभूतं वेदादि नित्यं स्मृतिपुराणादि च कृतकं लोकानां शासनात् शास्त्रपदेन कथ्यते । एव च सरस्वतीकण्ठाभरणे भोजराजः कथयति – “यद्विधौ च निषेधे च व्युत्पत्तेरेव कारणम् । तदध्येयं विदुस्तेन लोकयात्रा प्रवर्तते ॥”^(१) ‘शिष्यते अनेन’ इति व्युत्पत्तिलभ्यं ‘शास्त्र’ धातोः ‘सर्वधातुभ्यः ष्ट्रन्’ इति उणादि (४/१५८) सूत्रेण ‘ष्ट्रन्’ प्रत्यवद्वारा निष्पन्नं शास्त्रमिति पदं विद्यास्थानानां वाचकम् । तानि विद्यास्थानानि यथा- “अङ्गानि वेदाश्वत्वारो मीमांसान्यायविस्तरः । धर्मशास्त्रं पुराणश्च विद्या ह्येताश्वतुर्द्देशः ॥” एतेषु विद्यास्थानेषु काव्यस्य नामोल्लेखो न दृश्यते । किञ्च शास्त्रपदं शंसनात् शास्त्रमिति व्युत्पत्तिलभ्यं वेदान्तग्रन्थादिषु दृश्यते । तेषां मते शंसनं प्रतिपादनम् । प्रवृत्तिनिवृत्तिरहितस्य परमतत्त्वस्य तस्य ब्रह्मणः प्रतिपादनमेव शंसनमिति वेदान्तस्य शास्त्रत्वम् । स्थितेष्वेवंविधेषु विचारेषु काव्यस्य शास्त्रत्वं कथं सिद्ध्यतीति जिज्ञासा बलियसी वरिवर्त्ती । अतस्तदेवालोच्यते । प्रयोजनानुसन्धानेन ज्ञायते यत् काव्यशास्त्रस्य काव्यफलैरेव फलवत्त्वसिद्धिः । उक्तञ्च विश्वनाथेन-“अस्य ग्रन्थस्य काव्याङ्गतया काव्यफलैरेव फलवत्त्वमिति काव्यफलान्याह-- चतुर्वर्गफलप्राप्तिः सुखादल्पधियामपि । काव्यादेव यतस्तेन तत्त्वरूपं निरूप्यते ॥ चतुर्वर्गफलप्राप्तिःहि काव्यतो “रामादिवत्प्रवर्तितव्यं न रावणादिवत्” इत्यादिः कृत्याकृत्यप्रवृत्तिनिवृत्युपदेशद्वारेण सुप्रतीतैव ।”^(२) एव च काव्यप्रयोजनं प्रकाशयन् प्रकाशकारः ब्रूते-“काव्यं यशसेऽ कृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये । सद्यः परनिर्वृतये कान्तासंमिततयोपदेशयुजे ॥”^(३) अत्र वृत्तौ प्रकाशकारेण “तत्कान्तेव सरसतापादनेनाभिमुखीकृत्य रामादिवद्वर्तितव्यं न रावणादिवदित्युपदेशं च यथायोगं कवेः सहृदयस्य च करोती”^(४) त्यादिना काव्यस्य उपदेशप्रदानसामर्थ्यात् प्रवृत्तिनिवृत्तिकारकत्वं सुप्रतिष्ठितमिति कृत्वा शासनात् शास्त्रमिति व्युत्पत्त्या काव्यशास्त्रस्य शास्त्रत्वसिद्धिर्भवति । अपरञ्चात्र ‘सद्यः परनिर्वृतये’ इत्यादिना रसप्रतिपादनेन परमानन्द-प्राप्तिरेव प्रमुखकाव्यप्रयोजनमिति स एव समर्थयति “सकलप्रयोजनमौलिभूतं समनन्तरमेव रसास्वादनसमुद्भूतं विगलिदवेद्यान्तरमानन्द”^(५) मित्यादिना । अपि च “न हि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते, रसश्च मुख्यः”^(६) इत्यनेन भरतमुनिना रसस्य काव्ये महद्वैशिष्ट्यं प्रतिपादितमस्ति । विश्वनाथेनापि “वाक्यं रसात्मकं काव्य”^(७) मित्यादिना तदेव समर्थयति । अतो ब्रह्मानन्दसहोदरस्य रसस्य प्रतिपादनात् ‘शंसनं शास्त्रम्’मिति व्युत्पत्तिलभ्यं शास्त्रपदमप्यत्र संगच्छते । अत इदं वक्तुं शक्यते यत्- “शंसनात् शासनाद्वापि काव्याशास्त्रं निगद्यते ।”

एवमेव काव्यशास्त्रस्य शास्त्रत्वसिद्धिः । काव्यस्य शास्त्रं तत् काव्यशास्त्रम् । काव्यं नामलोकोत्तरवर्णनानिपुणकविकर्म । “कुरु शब्दे” इति धातोः औणादिकेन “अच ईः” इति सूत्रेण “इ” प्रत्यये कृते कवते इति कविः । कविशब्दात् “युणवचनब्राह्मणादिभ्यः ष्यञ्कर्मणि चे” त्यादिना ष्यञ्जि निष्पन्नः काव्यशब्दः कविकर्मणि प्रवर्तते । न पुनः “कवृवर्णे” इति धातोः कर्मणि ण्यत्प्रत्यये राजशेखरप्रतिपादितदिशा^(१), परतन्त्राभिहितत्वात् । “कवेः कर्म काव्यम्” इत्यत्र कविशब्दात्प्रत्यञ्जप्रत्यये कृते निष्पन्ने काव्यपदे इतरेतराश्रयदोषः अवश्यसम्भवात्पूर्वव्युत्पत्तिरेव ज्यायसी । यतो ह्यत्र कविशब्दात्काव्यस्य काव्याच्च कवेः सिद्धिर्भवति । अपि च “कु” इति धातोः “ओरावश्यके” इति पणिनिसूत्रेण १३/१/१२५ ण्यत्प्रत्यये कृते “अवश्यकवनीयं” काव्यमिति कवेः अवश्यकर्तव्यं किमप्यपूर्वमनवद्यं कर्म यदाकश्चिदपूर्वभावः कवेर्मनसि उदेति तदा सोऽवश्यं परिप्रकाशनीयः इत्यावेशितः कविः काव्यं कर्तुं प्रवर्तते । अतः उच्यते – “Poetry is the spontaneous overflow of powerful feelings.”

काव्यशास्त्रं नाम काव्यानुशासनम् । शासनन्तु लक्षणविभागादिना अज्ञातोऽर्थस्य ज्ञापनम् । यस्मिन्बलववगते काव्यस्य निर्माणे स्वरूपदोषगुणादीनामवधारणे च शक्तिरुन्मिषति इति । तदलङ्कारशास्त्रानाम्ना व्यपदिश्यते । यद्यपि

शास्त्रेऽस्मिन्काव्यस्वरूपरसा- लङ्कारगुणदोषादीनां निरूपणं सामान्येन भवति , तथापि काव्यवृत्तेस्तदाश्रयात्” इति ध्वनिकारोक्तदिशा काव्यव्यवहारप्रयोजकतया यमकोपमादीनामलङ्काराणां भूयोविषयकतया च प्राधान्येन प्राचीनैः “प्राधान्येन व्यपदेशः भवन्तीति न्यायेन” अलङ्कारशास्त्रमिति व्यपदिश्यते । अत एव भामहवामनादिभिः काव्यालङ्कारशब्दस्य प्रयोगः कृतः । “काव्यं ग्राह्यमलङ्कारां”^(७) इति तत्प्रमाणयति । अपि च सोऽलङ्कारः अलङ्कृत्यते अनेन इति करणव्युत्पत्त्या शब्दार्थगतसौन्दर्यपरः यमकोपमादिरूपः “सौन्दर्यमलङ्कारः”^(८) इत्यादिनोक्तम् । तेषां मते रसभावादयोऽप्यलङ्कारा एव । वयन्तु तावत् अलङ्कृतिरलङ्कारः” इति भावव्युत्पत्त्या दोषापगमगुणालङ्कारसम्बलनकृतसौन्दर्यपरं चरमकाव्यसौन्दर्यभूतं रसमेव विद्यः । तस्यैव काव्यसौन्दर्यभूतस्य रसस्य लक्षणविभागादिना ज्ञापनादेवास्यालङ्कारशास्त्रत्वमिति । अपरञ्च साहित्यशास्त्रमित्यस्य नाम बहुलभावेनाधुना प्रयुज्यते । “शब्दार्थौ सहितौ काव्य”मिति भामहवचनात् शब्दार्थयोः सहितयोर्भावं साहित्यमिति । “सम्” उपसर्गपूर्वकात् “दुधाङ्” धारणपोषणार्थकस्य धातोः क्तप्रत्ययनिष्ठं पदं संहितं भवति । अत्रापि च पुनः “लुम्पेदवश्यं मः कृत्ये तुकाममनसोरपि , समो वा हितततयोर्मासस्य पचि युङ्घवोः”^(९) इत्यनेन समित्यस्य मकारस्य विकल्पे लोपे सहितं पदं निष्पद्यते यस्य भावः साहित्यम् । यद्यप्यलङ्कारशास्त्रस्य कृते काव्यक्रिया-क्रियाकल्प-क्रियाविधि-काव्यलक्ष्म-काव्यलक्षणे त्यादीनि नामानि प्राचीनैः शास्त्रकारैः प्रयुक्तानि तान्यद्यापि प्रचलितानि न सन्ति । काव्यमीमांसापरकमिदं काव्यशास्त्रं काव्यस्य स्वरूपं तत्र गुणालङ्काराणां स्थितिः दोषाणां प्रकारादिविषये अवगमयतीति कृत्वा किं काव्यमित्युच्यते ।

कविकर्म काव्यम् । कवयः क्रान्तदर्शिनः । कविः क्रान्तदर्शी , द्रष्टा स्थाच । ^(११) विलक्षणप्रतिभाधन्यः लोकोत्तरवर्णनानिपुणः कश्चिदवश्यकवनीयमात्मानुभवं यदा साधुशब्दैः विशेषविन्यासद्वारा प्रकाशयति तत्काव्यमिति प्रचक्षते । उक्तञ्चनीलकण्ठदीक्षितेन शिवलीलार्णवे - m “यानेव शब्दान् वयमालपामः यानेवशब्दान् वयमुल्लिखामः” ^{Im} तैरेव विन्यासविशेषभव्यैः सम्मोहयन्ति कवयो जगन्ति ॥” कविरपरः प्रजापतिः । यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते । कवे: सृष्टिः ब्रह्मणः निर्माणमप्यतिशेते । अतः साधुकं काव्यप्रकाशकारेण नियतिकृतनियमरहितां ह्लादैकमर्यीमनन्यपरतन्त्राम् । नवरसरुचिरां निर्मितिमादधती भारती कवेर्जयति ॥”^(१२) इति तस्यैव काव्यस्य स्वरूपदोषगुणालङ्काराणां विवेचनं रसप्रतिपादनप्रकारादिकस्यालोचनञ्च काव्यशास्त्रस्य विषयः ।

पादटीका-

- (१) सरस्वतीकण्ठाभरणम् १३८/२
- (२) साहित्यदर्पणे प्रथमपरिच्छेदः
- (३) काव्यप्रकाशे प्रथमोल्लासः / २
- (४) तत्रैव
- (५) तत्रैव
- (६) नाठ्यशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः
- (७) साहित्यदर्पणे प्रथमपरिच्छेदः
- (८) काव्यालङ्कारसूत्रम् / १-१-१
- (९) काव्यालङ्कारसूत्रम् / १-१-२
- (१०) श्लोकवार्तिकम्
- (११) कविर्मनीषी परिभुः स्वयम्भूः याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधात् शाश्वतीभ्यः समाभ्यः ।
- (१२) काव्यप्रकाशे प्रथमोल्लासः / १

डा. स्वर्गकुमारमिश्रः, अध्यापकः, रा. सं. सं. मुम्बर्इ

वेदों में स्वास्थ्य चिंतन

कृ डॉ. अर्चना दुबे

संसार की समस्त क्रियाओं का साधन शरीर है और क्रियाओं का लक्ष्य साध्य की प्राप्ति। इन साध्यों की प्राप्ति में साधन (शरीर) ही, सहायक होता है। यद्यपि साधन से साध्य का स्थान ऊपर है तथापि साध्य प्राप्ति तक साधन परमावश्यक है। अतः यदि शरीर अस्वस्थ है तो साध्य की प्राप्ति असंभव है। कहा भी गया है कि “उत्तम स्वास्थ्य प्रकृति का सबसे बड़ा उपहार है”। किन्तु विश्व स्वास्थ्य संगठन (W.H.O.) की ताजा रिपोर्ट यह बताती है कि सम्पूर्ण विश्व में कैंसर की दर चिंताजनक गति से बढ़ रही है। एन प्रकरणों में इसकी संख्या पूरे विश्व में एक करोड़ से बढ़कर सन् 2020 तक 1.5 करोड़ होने की संभावना है। जबकि वर्ष 2000 तक इसके मरीजों की संख्या केवल एक करोड़ थी। विकसित हो रहे देशों में हैपिटाइटिस “बी” तथा “सी” वायरस (लिवर में होने वाला कैंसर) कारण है जबकि विकसित देशों में कैंसर की यह बीमारी क्रॉनिक संक्रमण के कारण होती है। यह सभी प्रकार के कैंसरों की संख्या का 8 प्रतिशत है न केवल कैंसर अपितु आज विश्व-मानवता मधुमेह (डायबिटीज), एड्स, स्वाइन फ्लू, जैसे अनेक घातक बीमारियों से घिर चुकी है। रिपोर्ट के अनुसार मधुमेह की बीमारी से ग्रस्त लोगों की संख्या आनुपातिक रूप में बढ़ गई है। “अन्तर्राष्ट्रीय डायबिटीज फेडरेशन” के अनुसार सारे विश्व में बीमारियों से मरने वालों में डायबिटीज मृत्यु का चौथा बड़ा कारण है। पूरे विश्व में आज अनुमानतः 246 मिलियन लोग डायबिटीज के तथा लगभग 31.3 मिलियन वयस्क एवं 2.1 मिलियन बच्चे एड्स के शिकार हैं। जबकि 300 दिनों में केवल स्वाइन फ्लू नामक बीमारी से ही वैश्विक स्तर पर होने वाली मृत्यु 48,750, 570 है। केवल भारतवर्ष में यह डाटा प्राप्त करने तक इस बीमारी से मरने वालों की संख्या 1000 हैं इसके अतिरिक्त अन्य देशों में इस बीमारी से मरने वाले लोगों की संख्या अलग है। संभवतः विश्व के इस भावी संकट का भास हमारे आदि पुरुषों ने पूर्व में ही कर लिया था। इसलिए वेदों में यह प्रार्थना की गयी है

तनूपा अग्रेऽसि तन्वं मे पाहि। आयुर्दा अग्रेऽस्यायुर्मेदहि वर्चोदा अग्रेऽसि वर्चो मे देहि। अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्म आपृण।

अर्थात् हे प्रकाश स्वरूप प्रभो। आप शरीर रक्षक हैं मेरे शरीर की रक्षा करिए। आप आयु देने वाले हैं मुझे आप आयु दीजिए। आप तेज देने वाले हैं मुझे तेज दीजिए। आप जो कुछ शरीर में से कम है उसे मेरे लिए पूरा कर दीजिए अर्थात् जीवन में सफल होने के लिए ज्ञान कर्म आदि सब गुणों की अपेक्षा है एवं उनका मूल शरीर ही है। मनुष्य कोई भी कार्य तब तक नहीं कर सकता जब तक कि उसका शरीर स्वस्थ न हो स्वस्थ विचार भी स्वस्थ शरीर में ही उत्पन्न होते हैं। इसलिए इस मन्त्र में प्रार्थना है कि ईश्वर हमें अपने शरीर को स्वस्थ रखने की शक्ति तथा बुद्धि दें। हमारे शरीर में किसी प्रकार की कोई कमी न हो जिससे शरीर की ओर से निश्चिन्त होकर हम अधिक ज्ञान प्राप्त कर सकें और परहित के कार्य कर सकें। अर्थ यह है कि हमारा स्वस्थ होना आवश्यक है तभी हम अभीष्ट कार्य करने में सफल होंगे। हमारे आदि ग्रंथ वेदों में स्वास्थ्य सम्बन्धी यह चिन्तन शारीरिक व मानसिक दोनों प्रकार का है। जो दीर्घायु प्राप्ति की अभिलाषा से किया गया है। जिस दीर्घायु की प्रार्थना वेदों में की गई है उसकी प्राप्ति की आकांक्षा मानव की सहज आकांक्षा है। वेदों में शरीर और मन की शक्ति के द्वारा दीर्घायु प्राप्त करने की बात कही गई है। ऋग्वेद में एक स्थान पर कहा गया है ऋग्वेदकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। अर्थात् ऋग्, यजु और साम के रूप में तीन शब्द करने वाले या तीन विद्याओंsa का ज्ञान कराने वाले परमेश्वर, जिन्हें हम पूजते हैं, जो मनोहर गन्ध वाले हैं और शरीर और मन की पुष्टि अर्थात् शक्ति बढ़ाने वाले हैं उनसे स्वस्थ रहने की अभिलाषा की गई है। ऋग्वेदकं* का अर्थ तीन माताओं वाला भी हो सकता है पृथ्वी, अन्तरिक्ष और आकाश ये तीन माताएँ हैं। पृथ्वी विभिन्न प्रकार के फलों, सब्जियों, अनाज, औषधियों और वनस्पतियों से हमें पालती पोसती है, विभिन्न खनिज पदार्थों से हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। इसी प्रकार अन्तरिक्ष हमें जल प्रदान करता है और शुद्ध वायु द्वारा हमारी प्राणरक्षा करता है। इस प्रकार मानव जीवन का पोषण एवं स्वास्थ्य प्राचीनकाल से ही प्रकृति आधारित है। पोषण की प्रवृत्ति के आधार पर ही इन्हें माता माना गया है। नैचुरोपैथी (फल, सब्जियों व वनस्पतियों द्वारा इलाज) इसी के अन्तर्गत आता है। शुद्ध जल और वायु तो मनुष्य के लिए अमृत समान है ही इसलिए इन्हें मानव जीवन के लिए अत्यवश्यक मानते हुए इनकी स्तुति की गई है। सूर्य के प्रकाश में मानव शरीर के लिए आवश्यक विटामिन “डी” भरपूर मात्रा में होता है, यह जीवनदायी है, इसके बिना अनाज की उत्पत्ति

नहीं हो सकती, वनस्पति के संवर्धन में भी यह सहायक है इसलिए वेदों में सूर्य को प्रमुख देवता माना गया है। वेदों का व्यापक भाव यह है कि स्वस्थ रहने की अभिलाषा केवल स्वयं के लिए ही नहीं बल्कि संपूर्ण विश्व के लिए की गई है -विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्नातुरम् । उत्तम स्वास्थ्य से न केवल शरीर क्रियाशील रहता है अपितु मन में भी उल्लास व प्रसन्नता बनी रहती है। शरीर एवं मन के स्वस्थ रहने से जीवन में शांति का भाव बना रहता है। यहाँ तक कि ऋग्वेद में एक स्थान पर शारीरिक स्वास्थ्य को शान्ति का आधार बताते हुए प्रार्थना की गयी है

शब्दः सूर्य उरुचक्षा उदेतु श्नश्चतत्रः प्रदिशो भवन्तु शब्दः पर्वता धूत्रयो भवन्तु शब्दः सिन्धवः समुसन्तवापः॥

यद्यपि कभी कभी शारीरिक सुख स्वास्थ्य होने पर भी चित्त अशान्त रहता है तथापि अशान्ति की स्थिति भी मानव निर्मित ही है अर्थात् जब मनुष्य प्रदूषण (जल, धूनि, वायु, भूमि सांस्कृतिक, वैचारिक आदि) नहीं कैलाएंगा तो उसे सब ओर से सुख शान्ति प्राप्त होगी। इतना तो निश्चित है कि प्रदूषण के ये सभी प्रकार मानवीय स्वास्थ्य, शारीरिक व मानसिक** दोनों को ही बुरी तरह प्रभावित करते हैं। शरीर के पूर्णतः स्वस्थ होने पर भी यदि मानसिक अस्वस्थ्यता है तो वह रोगी मनुष्य के साथ-साथ उस समाज के लिए भी घातक होगी जिसका वह सदस्य है। मनोविश्लेषकों के अनुसार जाने अनजाने मनुष्य जो सोचता है वह उसके जीवन पर प्रभाव डालता है क्योंकि विभिन्न ज्ञान-विज्ञान शुद्ध मन में ही प्रकाशित होते हैं। अतः मन का स्वस्थ रहना आवश्यक है। जीवन की उत्कृष्टता के लिए मन पर नियंत्रण तथा मन की शुद्धि अत्यन्त आवश्यक है। इसलिए यजुर्वेद के इस मन्त्र में प्रार्थना की गई है - **यजाग्रतो दूरमूदैति दैवं तदु सुमस्तथैवैति। दूरङ्गमङ्ग्योतिषाङ्ग्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।** अर्थात् मेरा मन सदा शुभ विचारों वाला हो। इसमें सदा परोपकार, दया, अपरिग्रह आदि के शुभ विचार ही रहें। जिससे समृद्ध, सुखी और परस्पर-सहयोग-पूर्ण समाज की रचना हो सके। क्योंकि मानव समाज की एक महत्वपूर्ण व आधारभूत इकाई है इसलिए किसी भी समाज के निर्माण में उसका प्रमुख योगदान होता है। किसी समाज का संगठन या विघटन उसके सदस्यों (मनुष्यों) के संगठन या विघटन को दर्शाता है। इस प्रकार मनुष्य के स्वास्थ्य से समाज के स्वास्थ्य का गहरा संबंध है। वेदों में समाज के प्रत्येक वर्ग व वर्ण के स्वास्थ्य पर ध्यान देते हुए उन्हें राष्ट्र के लिए आवश्यक माना गया है - **आब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम् राष्ट्रे राजन्यः शूर, इषव्योऽतिव्याधी, महारथो जायताम्॥** वेद की इस राष्ट्रीय प्रार्थना में जीवन के सभी पक्षों का महत्व समझकर उनके स्वास्थ्य और समृद्धि की कामना व्यक्त की गयी है। सर्वप्रथम ब्राह्मण के ब्रह्मतेज की प्रार्थना है क्योंकि अध्ययन-अध्यापन कराने वाला व्यक्ति ही विचारक होता है। स्वस्थ चिंतन के बिना राष्ट्र वास्तविक समृद्धि की ओर अग्रसर नहीं हो सकता। राष्ट्र में किसी प्रकार की भी शक्ति की कल्पना स्वस्थ-चिंतन-जन्य योजनाओं और उनके क्रियान्वयन के बिना नहीं की जा सकती। इस प्रार्थना में ब्राह्मण और राजन्य जाति विशेष के सूचक नहीं हैं अपितु चिन्तक और युद्ध कुशल वीरों के प्रतीक हैं। इतना ही नहीं वेदों में स्वास्थ्य के प्रति उनकी सूक्ष्म व संवेदनशील दृष्टि का पता इस बात से भी चलता है कि इस प्रार्थना में राष्ट्र के गौ, बैल, घोड़ा आदि पालतू पशुओं की सुरक्षा भी अपेक्षित है। राष्ट्र की स्त्रियाँ भी किसी प्रकार उपेक्षणीय नहीं हैं **दोग्धी धेनुर्वेदाऽनङ्गवानाशः सप्तिः पुरनिर्विर्योषाजिष्णूरथेषाः जायताम्।**

वैदिक प्रार्थनाओं में जिस प्रकार सार्वभौम कल्याण की कामनाएँ की गई हैं उससे उनकी उदारता एवं करुणा का भाव स्पष्ट होता है। ऋग्वेद में एक स्थान पर कहा गया है -

स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु स्वस्ति गोभ्योजगते पुरुषेभ्यः। विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु ज्योगेव दृशेम सूर्यम्॥

इसमें सार्वभौम कल्याण की कामना की गई है। परन्तु यह माना गया है कि सार्वभौम कल्याण भी अपने दृष्टिकोण तथा सामर्थ्य के बिना संभव नहीं। मनुष्य अपने आसपास के वातावरण का स्वयं निर्माता होता है। इसलिए यह प्रार्थना भी की गई है कि हमें संसार का उचित ज्ञान हो, जिससे हम उसके सौन्दर्य को समझ कर उसकी निर्मात्री महाशक्ति की कल्पना कर सके। अपने आसपास के वातावरण को सुन्दर बनाने के लिए दीर्घ और स्वस्थ जीवन की कामना की गई है। सौन्दर्य का स्वास्थ्य से सीधा संबंध है अर्थात् मानवीय व प्राकृतिक दोनों ही सौन्दर्य स्वास्थ्य आधारित हैं। शारीरिक स्वास्थ्य बाह्य सौन्दर्य में वृद्धि करता है और प्राकृतिक सौन्दर्य की वृद्धि में मानव का स्वस्थ दृष्टिकोण सहायक होता है। मानव बेहतर स्वास्थ्य के लिए सदैव प्रकृति से कुछ न कुछ प्राप्त करता रहता है। उत्तम स्वास्थ्य हेतु-शाक-भाजी फल-फूल खनिज लवण, औषधीय वनस्पतियाँ, सौन्दर्य प्रसाधन आदि सभी कुछ उसने प्रकृति से ही पाया है। मानवीय प्राणों का आधार औक्सीजन (प्राण वायु) तो सर्वसिद्ध है ही किन्तु इसी प्रकृति के पोषण के लिए मनुष्य की स्वस्थ सोच का होना आवश्यक है। इस सुन्दर संसार की सुन्दरता को

बनाए रखने एवं स्वयं सुन्दर (स्वस्थ) होने के लिए, सर्वशक्तिशाली परमेश्वर से प्रार्थना की गई है ऋग्वेद में कहा गया है - सविता पश्चात्तात् सविता पुरस्तात् सवितोत्तरात्तात् सविताधरात्तात्। सवित नः सुवतु सर्वतातिं सविता नो रासतां दीर्घमायुः॥। प्रार्थना यह है कि हमें शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक रूप से पूर्ण करें। क्योंकि जब मनुष्य में तीनों प्रकार का स्वास्थ्य उत्पन्न हो जाता है तभी वह दीर्घायु प्राप्त करने में सफल होता है। वास्तव में व्यक्तित्व विकास (Personality Development) में इन्हीं बिंदुओं का महत्वपूर्ण स्थान होता है जिन्हें जागृत व विकसित करने का कार्य किया जाता है। अतः यदि हम व्यक्तित्व का विकास करना चाहते हैं और दीर्घायु प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें हर प्रकार के पूर्ण स्वास्थ्यलाभ का प्रयत्न करना चाहिए। स्वास्थ्य लाभ तभी होगा जब सब दिशाओं का प्राकृतिक वातावरण हमारे अनुकूल हो और हम अपने आप को प्रकृति के अनुकूल ढाल लें, प्रकृति के साथ चलें यही स्वस्थ दीर्घायु का मूलमन्त्र है। प्रकृति से दूर होना, या प्रकृति से कटना स्वास्थ्य पर कुप्रभाव डालता है। वर्तमान आधुनिक जीवन शैली से कटना स्वास्थ्य पर कुप्रभाव डालता है। वर्तमान आधुनिक जीवन शैली का सबसे बड़ा दोष यही है कि हम प्रकृति से दूर हो गए हैं या लगभग कट गए हैं जिसके दुष्परिणाम हमारे सामने हैं। शोध के नतीजे ये बताते हैं कि कैंसर के विकाराल रूप धारण करने के कारणों में से एक कारण यह भी है। भौतिकता से परिपूर्ण आधुनिक जीवन की भागदौड़ में तनाव व अवसाद से हर दूसरा व्यक्ति ग्रस्त है। आधुनिक जीवन में रोगमुक्त दीर्घायु एक स्वप्न मात्र रह गयी है, ऐसे में आज पुनः तनावमुक्त व स्वस्थ जीवन जीने की इच्छा से लोग, ध्यान, सहजयोग, मंत्र, रेकी की ओर प्रवृत्त हुए हैं। प्राणायाम आज अनेक लोगों की जीवनचर्या का आवश्यक अंग है। वर्तमान का योगा वास्तव में प्राचीन योग का ही आधुनिक रूप है। इतना ही नहीं वर्तमान में प्राचीन योग के ही एक प्रकार “विक्रम हॉट योगा” “बौद्ध मंत्रों” और विपश्यना पद्धति के जरिए लोग अपने जीवन के शारीरिक व मानसिक कष्ट को मिटाकर सुखी जीवन जी रहे हैं। नवीनतम् तकनीकी से युक्त युवा पीड़ी मन्त्रों की शक्ति व उनसे होने वाले सकारात्मक व दूरगामी परिणामों को अनुभव कर रही है। यह स्थिति विश्व के उन महानगरों में अधिक भीषण है जहाँ अपने अस्तित्व को बचाए रखने के लिए मनुष्य को नितप्रति अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। ऐसे में मनुष्य के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही है। वेदों में जहाँ एक ओर सौन्दर्य व सुख के लिए उत्तम स्वास्थ्य को आवश्यक माना गया है वहाँ दूसरी ओर स्वास्थ्य में बाधा (रोग) उत्पन्न होने पर उनका निवारण भी बताया गया है। इस प्रकार ऋग्वेद का एक मन्त्र इसी हेतु से औषधियों को सम्बोधित है इसमें औषधियों को पोषक, शक्तिदायक व शरीर के सभी रोगों का विनाश करने वाली बताया गया है।

अश्वावतीं सोमावती मूर्जयन्तीमुदौजसम्।

अवित्सि सर्वा औषधीरस्मा अरिष्टतातेयं ॥

पादटिप्पणी-

1<http://euvoution.com/futurist-transhuman-news-blog/wp-content/plugins/wp-o-matic/cache/275d2_swine-flu-deaths.gif

2 शुक्ल यजुर्वेद 03। 17

3 ऋग्वेद 7।59।12

4 ऋग्वेद 01।1।14।01 अपि च शु. यजु. 16।48

5 ऋग्वेद 07।35।08

6 शुक्ल यजुर्वेद 34।01

7 शुक्ल यजुर्वेद 22।2।2

8 शुक्ल यजुर्वेद 22।22

9 अथर्ववेद 01।3।04

10 ऋग्वेद 10।36।1।4।

11 ऋग्वेद 10।97।07

असि. प्रोफेसर, रा.सं.सं.भोपाल परिसर, भोपाल

भारतीय सामुद्रिक शास्त्र और कीरो के द्वारा हस्तआकारों में साम्य व वैषम्य मत

कविता शर्मा

आकार- हाथ के आकार को देखकर किसी भी वयक्ति के स्वभाव व चरित्र को सरलता से बताया जा सकता है। कीरो वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाते हुए सात प्रकार के हाथों को स्वीकार करते हैं। लेकिन हमारे भारतीय सामुद्रिक शास्त्र में भी सात प्रकार के हाथों को तो स्वीकार किया ही है जिसमें से छः हाथों में मिश्रण स्वीकार करते हैं। इसके साथ – साथ हमारे विद्वानों ने कुछ अन्य बनावट के आधार पर भी वर्गीकरण प्रस्तुत किया है क्योंकि जिस तरह व्यक्तियों के चेहरे में समानता नहीं पाई जाती। उसी तरह हाथ में भी असमानता पाई जाती है। किसी का हाथ लम्बा होता है तो किसी का मांसहीन। इन सभी बातों को ध्यान रखते हुए यह वर्गीकरण किया गया है परन्तु मुख्य सात हाथ ही होते हैं। भारतीय सामुद्रिक शास्त्र व कीरो के द्वारा स्वीकार किए गए सात प्रकार के हाथ 1. निकृष्ट हाथ, 2 वर्गीकार हाथ, 3 चमसाकार हाथ, 4 कुछ नुकीला हाथ, 5 आदर्शवादी हाथ, 6 दार्शनिक हाथ, 7 मिश्रित हाथ 1. निकृष्ट हाथ - समानता – इस हाथ को निम्न श्रेणी, अयौगिक हाथ भी कहा जाता है जो देखने में सुदूर नहीं होता। इसके अतिरिक्त भारतीय इसे श्रमिक, अधम और प्रारम्भिक हाथ भी कहते हैं।

निकृष्ट हाथ की बनावट – इस हाथ की हथेली चौड़ी मोटी भारी व खुरदरी होती है। नाखून छोटी, मोटा व प्रथम पर्व भारी, अधिक मासं लिए हुए वर्गाकार का होता है।

निकृष्ट हाथ का फल – भारतीय व कीरो यह दोनों ही हथेली की लंबाई को विशेष रूप से महत्व देते हैं। इनके अनुसार हथेली की तुलना में अंगुलियां छोटी हो तो वह जातक मानसिक व बौद्धिक रूप से कम विकसीत होता। ऐसे हाथ वाले जातक बुद्धिहीन, डरपोक, मूर्ख असभ्य लालची शीघ्र कोशिष्ट होने वाले, व्यसनी होते हैं। इनमें महत्वाकांक्षा की कमी होती है।

2 वर्गीकरण हाथ - समानता – इस हाथ को चौकोर उपयोगी हाथ भी कहा जाता है। इसके अतिरिक्त भारतीय विद्वान इस हाथ और समकोण भी कहते हैं। बनावट- इस हाथ में अंगुलियों के आगे का भाग और नाखून वर्गाकार छोटे होते हैं, हथेली की लम्बाई और चौड़ाई में बराबर होती हुई चौकोर होती है।

फल- ऐसे हाथ वाले समय के पाबंद अनुशासन प्रिय, प्रबल इच्छा शक्ति वाले, मेहनती, शांतिप्रिय और रुढिवादी, दृढिनिश्चय, सच्चे- मित्र छलकपट से रहित कुशल व्यवहार वाले समय का सदुपयोग करने वाले और चरित्रवान होते हैं। किसी वर्गाकार हाथ में अंगुलियां दुसरे आकार की भी हो सकती हैं। अतः इस आधार पर भारतीय सामुद्रिक शास्त्र और कीरो ने वर्गाकार हाथ को सात भागों में विभाजित किया गया है- 1.1 छोटी वर्गाकार अंगुलियों के हाथ, वर्गाकार हाथ, 1.2 बड़ी वर्गाकार अंगुलियों के साथ, वर्गाकार हाथ, 1.3 चमसाकार वर्गाकार अंगुलियों के साथ, वर्गाकार हाथ, 1.4 नुकीली अंगुलियों के साथ, वर्गाकार हाथ, 1.5 अत्यधिक अंगुलियों के साथ वर्गाकार हाथ 1.6 गांठदार अंगुलियों के साथ वर्गाकार हाथ 1.7 मिश्रित अंगुलियों के साथ, वर्गाकार हाथ

1. चमसाकार हाथ - समानता - चमसाकार हाथ चमच की आकृति लिए हुए होता है। इस हाथ को आगे से फैला हुआ, गतिशील और चमसाकार हाथ भी कहते हैं। भारतीय इसके अतिरिक्त इस हाथ को सक्रिय व कर्मठ हाथ भी कहते हैं।

बनावट- इसकी हथेली चौड़ी अधिक मासं से युक्त अंगुलियों लंबी पूर्ण रूप से विकसीत और आगे के पर्व चौडे होते हैं।

फल- यह दोनों ही स्वीकार करते हैं कि इस हाथ से कुछ भी निश्चित करने से पहले हाथ की कठोरता व कोमलता का ध्यान रखना चाहिए।

कठोर चमसाकार हाथ- यदि यह हाथ कठोर हो तो ऐसे हाथ वाले जातक, प्रत्येक कार्य को जोश के साथ करते हैं, उनमें उमंग अधिक होती है।

कोमल चमसाकार हाथ- यदि यह हाथ कोमलता लिए हो तो जातक कार्य तो आरंभ करेगा, परन्तु उस कार्य के बीच में ही ढीला हो जाएगा अर्थात् कोमल चमसाकार हाथ वाले कार्य आरंभ तो कर लेते हैं, परन्तु समाप्त करने में समक्ष नहीं होते।

मध्यम श्रेणी का चमसाकार हाथ – यदि किसी का हाथ मध्यम श्रेणी का हो अर्थात् कठोरता और कोमलता दोनों का मिश्रण हो तो ऐसे जातक जातक आत्मनिर्भर, धैर्यवान, प्रधान कर्मशक्ति वाले, मेहनती भावुक, उदारहृदय, परिवर्तनशील बुद्धि वाले एवं अन्वेषणात्मक प्रवृत्ति के होते हैं। इसके साथ साथ भारतीय सामुद्रिक शास्त्र व कीरो इन दोनों इस हाथ की बनावट दो तरह से स्वीकार की है- 1 कलाई के पास से अधिक चौड़ा, 2 अंगुलियों के मूल में अधिक चौड़ा

वर्ग- ये अधिकतर इंजीनियर आविष्कारक ,खोजकर्ता नाविक मैकेनिक गायक अभिनेता डॉक्टर व धर्म- उपदेशक होते हैं।

4. कुछ नुकीला हाथ - समानता – इस हाथ को कलात्मक हाथ व कलापूर्ण हाथ कहते हैं, भारतीय विद्वान इसके अतिरिक्त इसे नौकदार कोनिक व व्यावसायिक हाथ भी कहते हैं। यह आदर्शवादी हाथ से बहुत मिलता जुलता होता है इसलिए इस हाथ को पहचानने के लिए सावधनीपूर्वक चाहिए।

बनावट- यह हाथ मध्यमाकार का कोमल सुदंर होता है, हथेली आगे से कम चौड़ी गुलाबी रंग लिए होती है। अंगुलियां जड़ से कम चौड़ी मजबूत और अतं में कुछ नुकीली होती है।

फल- कुछ नुकीले हाथ वाले कलाप्रेमी होते हैं इनके अनुसार यदि हाथ कठोरता और लचकता लिए हो तो वह दूसरों के द्वारा प्रेरित किए जाने पर कला क्षेत्र में सफलता प्राप्त करते हैं। ऐसे हाथ वाले भरपूर जोश से युक्त होते हैं। ये जातक शीघ्र ही दूसरों को प्रभावित कर लेते हैं और प्रभावित हो भी जाते हैं जिसके कारण इन्हे धोखे का सामना करना पड़ता है।

वर्ग- कला व अभिनय क्षेत्र से संबंध रखने वाले जातक इसी हाथ की श्रेणी के अतंर्गत आते हैं।

5 आदर्शवादी हाथ - समानता- यह हाथ बहुत पतला, लंबा अंगुलियां भी पतली लंबी आगे से नुकीली होते हैं ऐसे हाथ के नाखून लम्बे सुन्दर व बादाम की तरह होते हैं।

बनावट- यह हाथ पतला लंबा अंगुलियां भी पतली लंबी, आगे से नुकीली होते हैं ऐसे हाथ के नाखून लम्बे सुन्दर व बादाम की तरह होते हैं।

फल- इन दोनों के अनुसार ऐसे हाथ धार्मिक, भावुक, सज्जन, कोमल स्वभाव के सौन्दर्यप्रेमी दानी व प्रकृति के रंगो से प्रेम करने वाले होते हैं। ये कभी सच जानने का प्रयास नहीं करते कि ऐसा क्यों हुआ और शीघ्र ही दूसरों का विश्वास कर लेने के कारण कई बार धोखा खा जाते हैं। इन्हें जादू- खेल बहुत आकर्षित करते हैं, परन्तु इसके पीछे की गोपनीयता को जानने का प्रयास नहीं ऐसे हाथ वाले भावुक व कोमल स्वभाव के होते हैं। ये अधिक भावना प्रधान होने के कारण जीवन को व्यर्थ समझने लगते हैं। अतः समाज को इन्हे समझना चाहिए और समय- समय पर इन्हें प्रोत्साहित करते रहना चाहिए।

6. दार्शनिक हाथ – समानता- यह हाथ लम्बा व नुकीला होता है, अंगुलियां गांठ युक्त होती हैं। यह हाथ प्रायः भारत में अधिक लोगों का पाया जाता है। इन दोनों के अनुसार इस हाथ में गांठ का होना विचारप्रधान होने का संकेत देता है। कीरो भारतीय विद्वान दोनों ही इंगलैड के पादरियों के भी यह हाथ स्वीकार करते हैं। इन्होने इंगलैड के कार्डिनल मार्निंग, कार्डिनल न्यूमैन टैटनिस के कहे गए हैं।

7. मिश्रित हाथ –बनावट- (समानता) इस हाथ की अगुलिया अलग- अलग आकार की होती है। यदि

ऐसा न हो तो हथेली किसी एक आकार की होगी और अंगुलियां किसी दूसरे आकार की होगी। है।

फल- मिश्रित हाथ वाले जातक बहुत अधिक प्रतिभाशाली होते हैं। ये अपने कार्य को कूटनीति और बड़ी चतुरता के साथ करते हैं। लेकिन अत्याधिक गुणों से युक्त व समय के सीमित होने के कारण व्यर्थ को पूरा नहीं कर पाते। इनका स्वभाव मिलनसार होता है, जिसके कारण यह शीघ्र ही दूसरों से घुल मिल जाते हैं। इनकी सबसे बड़ी विशेषता इनका परिवर्तनशील स्वभाव है, जिसके कारण इन्हें किसी भी क्षेत्र में विशेष सफलता नहीं मिल पाती।

संदर्भ सूचि-

1. ओद्दा, गोपेश कुमार, हस्तरेखा विज्ञान, पृष्ठ संख्या- 24
- 2 कीरो, हस्तरेखा तथा भविष्य विज्ञान, पृष्ठ संख्या- 2,21,24, 25,26, 27,29, 31, 32, 33,34,118,37,38,39,
- 3 शर्मा, प्रेम कुमार – बृहद सामग्री विज्ञान पृष्ठ संख्या- 110,16,32,33,27,28,15,31,
- 4 कीरो, हस्तरेखा तथा भविष्यज्ञान, पृष्ठ संख्या- 2
- 5 सिंह, जे पी, हस्तरेखा विज्ञान, पृष्ठ संख्या- 106,107,130,112,133,134,118,120,126,124,33
- 6 दीक्षित, राजेश बृहद विशाल सामुद्रिक विज्ञान पृष्ठ संख्या- 17,36,37,106,18,24,26,22, 23,27
- 7 कीरो, हस्तरेखा और प्रेम विवाह ,पृष्ठ संख्या – 111,113,118
- 8 कृष्णपूर, गौरीशंकर कीरो हस्तरेखा बोलती है पृष्ठ संख्या- 1,16,17, 29,30, 90,93,94,291,35,36,
- 9 मिश्रा, सोमनाथ एवं राजेन्द्र नाथ हस्तरेखा शास्त्र पृष्ठ संख्या – 7,8
- 10 वादरायण, कीरो सम्पूर्ण हस्तरेखा विज्ञान पृष्ठ संख्या – 26,30,

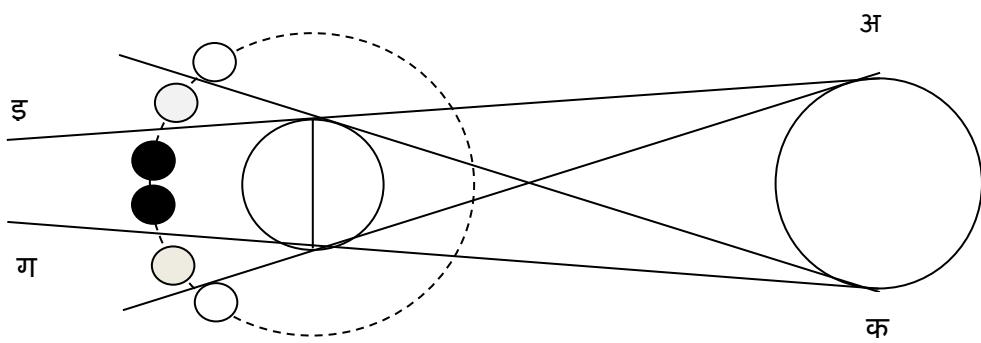
शोधच्छाकर्त्ता जगद्गुरु संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर

ग्रहणम्

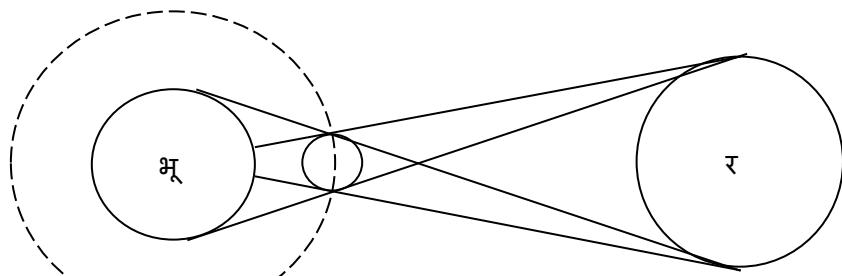
विजयानन्दः अडिगः बि

अथ यथामति सवासनं ग्रहणितं प्रपञ्चयते। सूर्यचन्द्रमसौ पर्वान्तकले राहुकेतू गृहीतः अतो ग्रहणं सम्भवतीति सर्वषां विदितचरम्। एवं ग्रहणं ग्राहकेन गृहीते ग्राह्ये भविष्यति इति ज्ञायते। तर्हि अत्र ग्राह्यग्राहकयो योगः अवश्यम्भावीः, स च योगः अन्तराभावे भविष्यति। अत्र चन्द्रकक्ष्याच्छेदनबिन्द्वोः राहुकेतू इति संज्ञासत्यात् स्वकक्षावृते स्वविक्षेपेण विक्षिसो भ्रमन् इन्दुः यदा विक्षेपाभावस्थितिम् अर्थात् तत्कक्षाच्छेदनबिन्दुम् अभिगच्छति तदा तत्समीपवर्तिनि पर्वान्ते भूच्छायां रविं वा प्रविशतीति ग्राह्यग्राहकयोः योगात् ग्रहणं सम्भवति।

अथ कथं तयोः योगः इति चेदुच्यते- अमायां हि सूर्यचन्द्रमसौ राश्यादिस्थित्या, पूर्णिमायां च अंशादिस्थित्या समौ भवतः अतः शून्यसमयोः भार्धान्तरितयोश्च तयोः पूर्वापरान्तराभावः सिद्ध्यति। परं च शरवशात् चन्द्रः ३०८ कलापर्यन्तं याम्योतरं याति, यदा तु सः राहो केतोर्वा समीपमागच्छति तदा याम्योतरान्तरं च जहाति। एवं पूर्वापरे याम्योतरे च निरन्तरिते योगः स्यात्। महातेजोमयस्य रवे: तीक्ष्णप्रकाशात् स्वप्रकाशरहितस्य भूषिण्डस्य रव्यभिमुखी दिक् प्रकाशते, तदितरा च दिक् प्रकाशाद्विरुद्धदिशि सम्पतन्त्या भूच्छायया अन्तरितत्यात् न प्रकशते। इयं च भूच्छाया रविगत्यनुसारेण क्रान्तिवृते एव रवितः भार्धान्तरे सदा भ्रमति। अतः सूर्यचन्द्रमसौ भूमिश्च पूर्णिमान्ते एकस्यामेव सरलरेखायां सम्मिलन्ति तत्र क्रियद्वागाधिकोनके शरान्तरे चन्द्रः भूभां प्रविशति, तथैव अमन्ते रविं छादयति। एवं सूर्यचन्द्रमसोर्मध्यस्थे भुवि चन्द्रग्रहणं, भूसूर्ययोः मध्यस्थे चन्द्रमसि रविग्रहणमिति सामान्यतो ग्रहणपरिभाषा। अमुमेवार्थं स्पष्टीकर्तुमिदमालेख्यं किञ्चिदिहास्ति-



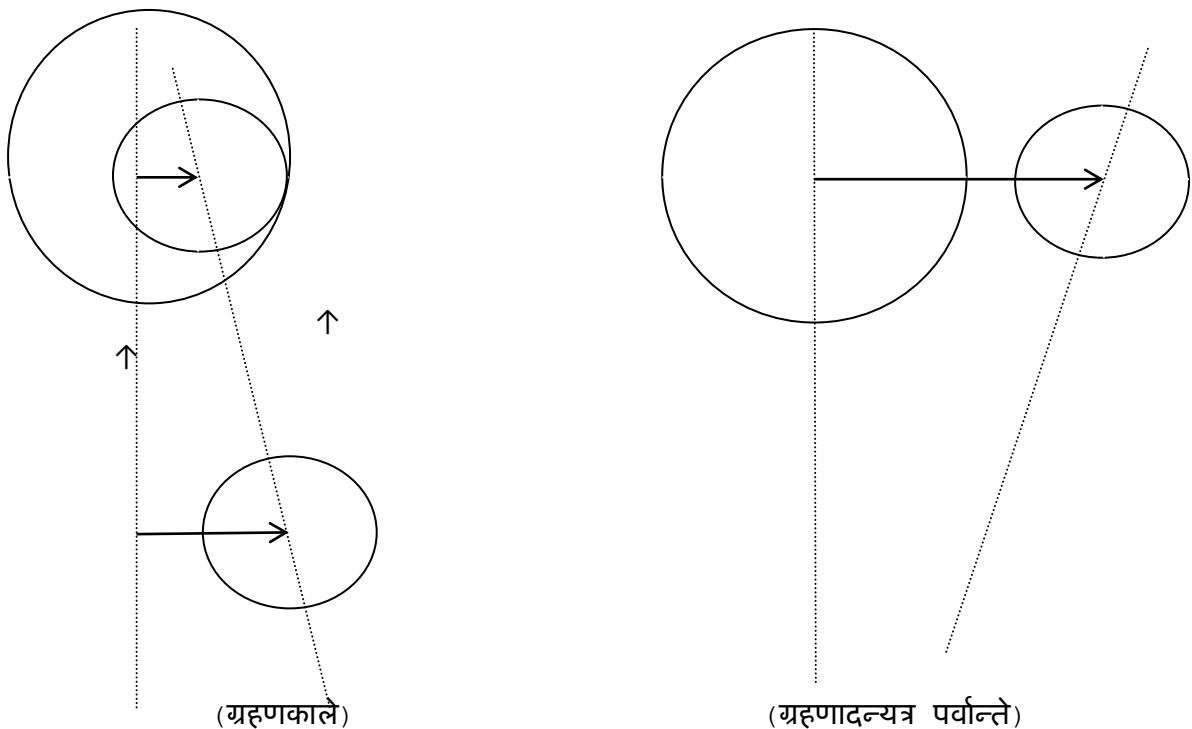
एवमत्र रवितः सन्ततं किरणाः समन्ततः प्रसृताः स्वाभिमुखं भुभागं प्रदीपिताः तदितरभागं छायापातात् निर्दीपिताश्च कुर्वन्तो दृश्यन्ते ! इयं भुवछाया सूच्याकारा पतति यतः उक्तं - 'भानोर्बिम्बपृथुत्वादपृथुपृथिव्याः प्रभा हि सूच्यग्रा' ^१ इति ! स्वकक्षायां भ्रमन् इन्दुः स्वगत्या पूर्वतः एव गच्छन् भूभां प्रविशति अतः चन्द्रबिम्बस्य प्राग्दिशि स्पर्शः पश्चाच्च मोक्षः। अतोत्र ग्राह्यः (छायः) चन्द्रः ग्राहिका (छादिका) भूभा भवति। अत्र "अ इ" "क ग" समानस्पर्शकभ्यां भूभा पूर्णरूपेण समुत्पना परन्तु सूर्यादूर्ध्वाधोभागभ्यां समागताः किरणाः भुवः अधोभागम् उर्ध्वभागं च क्रमशः प्रदीपयन्त्येवः, परं च किरणवक्रीभवनादीषदेव प्रदीपयन्ति अतः अयं 'भूभाभासः' इति 'मान्यखण्डम्' इति वा व्यवहित्यते अस्मिन् स्थाने तु चन्द्रस्य दीसिष्टासमात्रं भविष्यति।



अत्र रविग्रहे चन्द्र एव स्वगत्या पूर्वतो गच्छन् रविबिम्बम् आच्छादयति अतः रविबिम्बस्य पश्चाद्दिशि स्पर्शः, प्राग्दिशि च मोक्षः। तदेवोक्तं भास्करेण - 'पश्चाद्गाजजलदवदैःसंस्थितोऽभ्येत्य चन्द्रः' ² इति। तथैव

भूच्छायां स्वग्रहणे भास्करमर्कग्रहे प्रविशतीन्दुः। प्रग्रहणमतः पश्चान्नेन्दोर्भानोश्च पूर्वार्धात्॥ ³ इति संहितोक्त्या चन्द्रस्य पश्चादर्थभागतः सूर्यस्य पूर्वार्धभागतश्च च ग्रहणं कदापि न सम्भाव्यम् इति जायते। एवमत ग्राह्यः (छायः) रविः ग्राहकः चन्द्रः। परं च उभये अपि आलेख्ये शररूपं याम्योत्तरान्तरं नैव दर्शितम्। स च शरः ग्राह्यग्राहकयोः बिम्बयोः मध्यवर्त्यन्तरमेव।

तद्यथा -



ग्रहणकाले ग्राह्यग्राहकयोः बिम्बमध्यवर्त्यन्तरं (याम्योन्तरान्तरं) विक्षेपतुल्यं भवति, तदितरपर्वान्ते^१पि विक्षेपतुल्यमेव याम्योत्तरान्तरं भवति; परं च अल्पे विक्षेपे ग्रहणं अधिके च अग्रहणम् इति आलेख्यद्वारा ज्ञातुं शक्यते। इदनीं ग्रहणगणितविधिं किञ्चित् पश्यामः - यद्दिने ग्रहणं सम्भाव्यं तद्दिनीयरविचन्द्रपातान् स्फुटीकृत्यं पर्वान्ते प्रचाल्यं ग्राह्यग्राहकयोः बिम्बमानं तिथ्यन्तचन्द्रशरश्च समानयेत्। पौर्णमास्यन्ते भूभाचन्द्रयोः दर्शान्ते सूर्यचन्द्रमसोश्च समत्वेऽपि याम्योत्तरान्तरं विक्षेपतुल्यं भवति, विक्षेपस्तु ग्राह्यग्राहकबिम्बमध्यान्तरम्। स च विक्षेपः यदा मानैक्यार्थतुल्यं तदा बिम्बप्रान्तयोरेव योगः, यदा तु विक्षेपः

मानैक्यार्थादल्पः तदा च्छाद्यबिम्बे च्छादकबिम्बं प्रविशति। यावत्प्रमाणं छाद्ये च्छादकं प्रविष्टं तावत्प्रमाणं ग्रासप्रमाणं भवति। एवं छाद्यबिम्बादल्पे ग्रासप्रमाणे खण्डग्रहणं, छाद्यबिम्बादधिके ग्रासप्रमाणे खग्रासग्रहणं च भवति। एवं मानैक्यमानातरार्थं क्रमशः शरोने ग्रासखग्रासमाने स्याताम्। तदेतदुक्तम् - “ग्राह्यग्राहकमानैक्यखण्डं मानान्तरार्थकम्। शरहीनं भवेन्मानं ग्रासखग्रासयोः क्रमात्॥” इति तिथिविरतिरयं ग्रहस्य मध्यः⁴ इत्युक्ते: तिथ्यन्तकालः एव ग्रहणमध्यकालः स्यात् ततः स्पर्शादिकालानयनाय एवं कुर्यात् - स्पर्शकाले बिम्बगर्भान्तरं मानैक्यार्थतुल्यं भवति इदं च कर्णरूपम्, तत्र यः शरः सा कोटि: एतयोर्वर्गान्तरपदं भुजः। अयं भुज एव ग्राहकमार्गखण्डम्। एवमिदं ग्रहणत्र्यसक्षेत्रमित्युच्यते। चन्द्रार्कयोरुभयोः प्रागगतित्वात् भुक्त्यन्तरतुल्यकलाभिः ६० घटिकाश्वेल्कभ्यन्ते तर्हि लब्धभुजकलाभिः किमिति अनुपातेन स्थित्यर्थघटिकाः लभ्यन्ते। परं च एताः स्थित्यर्थघटिकाः ततकालीनशराज्ञानात् स्थूलाः स्युः। अतः असकृत्कर्मणा स्फुटस्थित्यर्थघटिकाः लभ्यन्ते। मध्यग्रहणात् स्थित्यर्थघटिकातः पूर्व ग्रहणस्पर्शकालः, स्थित्यर्थघटिकातः अनन्तरं मोक्षश्च भवति। एवमेव, मानैक्यार्थस्वीकरणेन यथा स्पर्शमोक्षकालौ तथा मानान्तरार्थग्रहणे सम्मीलनोन्मीलनकालौ सिद्ध्यतः, अत्रापि ततकालीनशराज्ञानात् असकृत्कर्म कर्तव्यम्।

इत्येवं पूर्वोक्तं कर्म चन्द्रग्रहणे एव साधु भवति न चार्कग्रहणे। यतः - क्रान्तिवृत्तानुगमिनी सूच्याकारा भूभा चन्द्रकक्षामतीत्य दूरं बहिः गच्छति इत्यतः चन्द्रग्रहणे च्छादयच्छादकयोः एकैव कक्षा जाता; परन्तु रविग्रहणे च्छादयच्छादकयोः ऊर्ध्वाधोरूपकक्षाभेदसद्वावात् भूम्यर्थेन उच्छ्रितः द्रष्टा चन्द्रं सदा लम्बितमेव पश्यति। अतः यदा गर्भीयदर्शनान्तः न तदा पृष्ठीयदर्शनान्तः गर्भीयदर्शनान्तः त्वरया विलम्बेन वा पृष्ठीयदर्शनान्तः भवति। एवं तिथेः भिन्नं पूर्वोपरान्तरं जायते, एतदेव लम्बनमिति कथ्यते। यथा यथा पूर्वोपरान्तरं जायते तथा यथा याम्योन्तरान्तरमपि जायते इत्यतः शरात् भिन्नं याम्योन्तरान्तरं सिद्ध्यति। इदमेव नतिरिति कथ्यते। उभेऽपि एते लम्बनावनती कक्षाभेदसद्वावादेव सज्जायते। पूर्वोपरान्तरजनितत्वात् लम्बनं तिथौ संस्कार्य, याम्योन्तरान्तरजनितत्वात् नतिः शरे संस्कार्या। लम्बनसंस्कृततिथ्यन्तः द्वग्दर्शनान्तः इति, नतिसंस्कृतशरः स्फुटशरः इति च कथ्यते। अत्र सूर्यग्रहणे द्वग्दर्शनान्त एव ग्रहणमध्यकालः। चन्द्रग्रहणोक्तविधिनैव स्थित्यर्थाद्यानयेत्। परञ्च तत्रत्कालीनम्बननतिजनितसंस्कारः तत्र देयः। अतः अत्र भूयः असकृत्कर्म कर्तव्यं भवति। एवमसकृत्कर्मणा स्पर्शादिकालाः विज्ञेया। खग्रासग्रहणे स्पर्शसम्मीलनमध्योन्मीलनमोक्षाश्वेति पञ्च स्थितयः सम्भवन्ति; खण्डग्रहणे तु स्पर्शमध्यमोक्षाश्वेति तिसः एव स्थितयो भवन्ति। ग्रहणे आस्पर्शादामोक्षं स्थितिः इत्युच्यते। ग्राहकः ग्राह्यं यदा स्पृशति तदा स्पर्शः, यदा पूर्णमाच्छादयति तदा सम्मीलनम्, तिथ्यन्ते मध्यकालः अथवा स्पर्शमोक्षयोः सम्मीलनोन्मीलनयोर्वा मध्यं मध्यकालः, पूर्णाच्छादितस्य ग्राह्यस्य मोक्षारम्भः उन्मीलनम्, यदा च ग्राहकः ग्राह्यं विमुच्यति तदा मोक्षश्च सम्भवति। सम्मीलनात् उन्मीलनपर्यन्तं ग्राहकः ग्राह्यं मर्दयतीति सः कालः विमर्दकालः इत्युच्यते। खण्डग्रहणे पूर्णाच्छादनासद्भावात् सम्मीलनोन्मीलने न स्तः।

सूर्यचन्द्रयोः ग्रहणे भेदः -

ग्रहणसम्भवादेव उभयत्र ग्रहणे भेदः वर्तते। 'सपातसूर्योऽस्य भुजांशका यदा मनूनका: स्यादग्रहणस्य सम्भवः'⁵ 'पताद्यार्कभुजांशका यदि नगोनाः स्युस्तदार्कग्रहः'⁶ इति शिरोमण्युक्त्या सपातसूर्यभुजांशाश्वेत् चतुर्दशभ्यः ऊनाः तदा चन्द्रग्रहणस्य, सप्तभ्यः ऊनाः चेत् तदा रविग्रहणस्य च

सम्भवो ज्ञेयः। 'विराह्वर्कबाहौ विश्वाल्पांशे सम्भवः गोशाल्पांशे च निश्चयचन्द्रग्रहस्य; रविग्रहस्य च एकोनविंशतितः अल्पे विराह्वर्कबाहौंशे सम्भवः, त्रयोदशभ्यः अल्शांपे भूपृष्ठे कुत्रचित् ग्रहणं भवत्येव'⁷ इति वैकटेशकेतकरवचनात् तैः सूक्ष्मरूपेण परिशीलितमिति ज्ञायते। स्पर्शमोक्षदिग्व्यत्यासः अन्यः भेदः। चन्द्रग्रहणे चन्द्रविम्बस्य प्राग्दिशि स्पर्शः पश्चान्मोक्षः ; सूर्यग्रहणे तु सूर्यविम्बस्य पश्चाद्विशि स्पर्श प्राङ्मोक्षश्च भवति। अपरश्च भेदो यथा - अर्कच्छादकाच्चन्द्रच्छदकः पृथुः, अत एव अर्थखण्डितं रविविम्बं शृङ्गाकारेण दृश्यते चन्द्रविम्बं च कदापि तथा न दृश्यते ग्रहणे। बृहच्छादकादेव चन्द्रग्रहणस्थितिः महती, सूर्यग्रहणस्थितिश्च लघ्वी भवति। इतोऽपि चन्द्रस्य खग्रासग्रहणे सर्वे विदेशान्तरस्थाः यत्र कुत्रापि स्थिताः जनाः पूर्णमेव ग्रस्तं चन्द्रं, खण्डग्रहणे च खण्डितमिति सममेव पश्यन्ति। परन्तु न तथा रविग्रहणे; यथा मेघच्छन्ने रवौ कैश्चित् पूर्णतया रविः न दृश्यते, कैश्चित् पूर्णतया दृश्यते, कैश्चित् च खण्डित इव दृश्यते तथैव ग्रस्तो रविः कैश्चित् पूर्णग्रस्तः कैश्चित् अर्धग्रस्तः कैश्चित् च पूर्णाग्रस्त एव दृश्यते। एवं पूर्णं ग्रस्तं रविं सर्वे समं न पश्यन्ति। अस्य तु ग्राहयग्राहकयोः कक्षाभेद एवं कारणं भवति। पूर्वलिखितालेख्यदर्शानदेव एतत् स्फुटति। एवं रवे: पूर्णग्रहणं क्वाचित्कमिति ज्ञायते। ग्रस्तविम्बवर्णं अपि व्यव्यासोऽस्ति तदयथा -

‘स्वल्पे च्छन्ने धूमवर्णः सुधांशोरर्धे कृष्णः कृष्णरक्तोऽधिकेऽर्धत्।

सर्वच्छन्ने वर्णं उक्तः पिशङ्गो भानोऽच्छन्ने सर्वदा कृष्ण एव॥’⁸

अतः अर्धादूने ग्रस्ते चन्द्रे बिम्बं धूमवर्णयुक्तम्, अर्धाधिके कृष्णताम्भम्, अर्धच्छन्ने कृष्णवर्णयुक्तं, सर्वग्रहणे पिशङ्गवर्णयुक्तं च दृश्यते। परन्तु खण्डितं पूर्णग्रस्तं वा रविविम्बं कृष्णवर्णयुक्तमेव सर्वदा दृश्यते।

अनादेश्यग्रहणम् -

चन्द्रविम्बे भूभया षोडशांशः खण्डितश्चेदपि तावदल्पप्रमाणग्रासः दृग्गोचरो न भवति, तथैव रविविम्बे द्वादशांशः चन्द्रेण खण्डितश्चेदपि तावदल्पप्रमाणग्रासः अपि दृग्गोचरो न भवति। अतः ततोप्यल्पप्रमाणकं ग्रहणं नादेश्यमिति शास्त्रनिर्णयः।

इत्येवं यथामिति ग्रहणविचारे शास्त्रसन्दर्भः प्रपञ्चितः इत्यलमतिविस्तरेण। नमोऽस्तु पूर्वप्रणेतृभ्यः।

पाद-टिप्पणी

¹सिद्धान्तशिरोमणिः- गोलाध्यायः-ग्रहणवासना - क्षो.५

² सिद्धान्तशिरोमणिः- गोलाध्यायः-ग्रहणवासना - क्षो.१

³ बृहत्संहिता - राहुचाराध्यायः क्षो.८

⁴ केतकीग्रहणितम् - चन्द्रग्रहणाधिकारः- क्षो.६ (अयं मूलतः ग्रहलाघवस्य क्षोकः)

⁵ सिद्धान्तशिरोमणिः- गणिताध्यायः-पर्वसम्भवाधिकारः क्षो.१

⁶ सिद्धान्तशिरोमणिः- गणिताध्यायः-पर्वसम्भवाधिकारः क्षो.४

⁷ ज्योतिर्गणितम् - द्वितीयपरिच्छेदः - द्वितीयः अध्यायः - क्षो.६.व्याख्यानम्

⁸ सिद्धान्तशिरोमणिः- चन्द्रग्रहणाधिकारः क्षो.३७

सन्दर्भग्रन्थसूची -

१. केतकीग्रहणितम् - भारतीय विद्या प्रकाशन , वाराणसी - २००६
२. ज्योतिर्गणितम् - चौखम्भा कृष्णदास अकाडमी, वाराणसी - २००८
३. बृहत्संहिता - सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालयः , वाराणसी - १९९७
४. सिद्धान्तशिरोमणिः - चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी - २००५

राष्ट्रीयसंस्कृतसंस्थानम्.क.जे.सोमैया, विद्याविहारः, मुम्बई

वृत्ते: स्वरूपविचारः

डॉ.नवीनकुमारमिश्रः

इदानीं मया समासवृत्तिविषये चर्च्यते । तत्र का नाम वृत्तिरिति ? शङ्कायां दीक्षितमहाशयः वैयाकरणसिद्धान्तकौमुद्यां सर्वशेषसमासप्रकरणे कथयति - “परार्थाभिधानं वृत्तिः” । अभिधीयते अर्थात् उच्यते अनेन इति अभिधानम् । विग्रहवाक्यस्य यः अवयवपदार्थः तस्मात् परः अर्थः अर्थात् भिन्नः अर्थः यः विशिष्टः एकार्थः तस्य एकार्थस्य प्रतिपादिका या सा वृत्तिः प्रक्रियावेलायां प्रत्येकमर्थवत्वेन प्रथमविगृहीतानां समुदायशक्त्या विशिष्टैकार्थप्रतिपादिका वृत्तिरिति । कैयटस्तु परस्य शब्दस्य यः अर्थः तस्य शब्दान्तरेण अभिधानं यत्र सा वृत्तिः । यथा राजपुरुष इत्यत्र राजशब्देन प्रक्रियादशायाम् अनुकृतः राजसम्बन्धपुरुष इत्यर्थोऽभिधीयते । नागेशाशयः प्रधानार्थकशब्दस्योपसर्जन शब्दस्यार्थाभिधानं यत्र सा वृत्तिः । यथा समासादिषु वृत्तिव्यवहारः । एवज्च तनिष्ठशब्दान्तरकरणकपदार्थाभिधायकत्वं तेषां स्वाश्रयत्वेन वृत्तिव्यवहारप्रयोजकं सामर्थ्यम् । तच्च स्वार्थविशेषणकपुरुषार्थोपस्थितौ राजपदशक्तिज्ञानस्य सहकारित्वेनैव बोध्यम् । भाष्ये मञ्जूषायाज्च वृत्तिर्द्विधा जहदजहदस्वार्थभेदेन । वैयाकरणमते जहत्स्वार्थवृत्तिर्नाम एकार्थीभावः अजहत्स्वार्थस्तु व्यपेक्षाभावः । कृतद्वितसमासैकशेषसनाद्यन्तधातुरूपाः पञ्चवृत्तयो स्वीकार्याः । परार्थान्वितस्वार्थो-पस्थापकत्वाभावात् नवीनानां मते तु एकशेषवृत्तिर्नास्ति । वस्तुतस्तु द्वन्द्वापवादतया एकशेषस्यापि वृत्तित्वमुचितमित्यन्यत्रानुसन्धेयम् । अत्र कृत्पदेन कृदन्तः, तद्वितपदेन च तद्वितप्रत्ययघटकः समुदायः । इमाः पञ्चवृत्तय एव पदविधिशब्देन गृह्णन्ते । तासामुदाहरणम्-कुम्भं करोतीति कुम्भकारः, दशरथस्यापत्यं पुमान् दाशरथिः रामः, पीतम्बरवान् पीताम्बरः, माता च पिता च पितरौ, पठितुमिच्छति पिपठिषति । उपर्युक्तवृत्तिषु परार्थाभिधानं वर्तते यथा-कुम्भकर्मकोत्पत्तिकर्ता, दशरथस्यपुंस्त्वविशिष्टः । पीताभिन्नाम्बरवान् मातृसहितापिता, पठनकर्मकसमानकर्तृकेच्छेति । तत्र कौमुद्यामेव सर्वशेषसमासप्रकरणे आह-वृत्यर्थावोधकं विग्रहः (विशिष्टः, ग्रहः, विग्रहः) स च द्विविधः लौकिकमलौकिकज्ज्च । यथा-रामः रमन्ते यस्मिन् (रमु घञ्) वासुदेवः वसुदेवस्य अपत्यं पुमान् श्रीकृष्णः (वसुदेव अण्) रामौ- रामः च रामश्च, जिगमिषति- (गम् गम् सन्) गन्तुमिच्छतीति ।

समासत्वन्तु - सङ्केतविशेषसम्बन्धत्वेन समासपदवत्वम् एकार्थीभावापन्पदसमुदायविशेषो वा । समर्थपदे एव समासवृत्तिः कर्तव्यः । अत एव कृष्णं श्रितः कृष्णश्रितः इत्यादौ सामर्थ्यात्समासः, पश्य देवदत्त कृष्णं श्रितो विष्णुमित्रो गुरुकुलम् इत्यत्र असामर्थ्यात् न समासः । सम्बन्धार्थः संसृष्टार्थः सङ्गतार्थो वा समर्थः । यत्र एकः अर्थः आकाङ्क्षया अपरेण अर्थेन सह सम्बद्धः भवति सः सम्बन्धार्थः । यथा राज्ञः पुरुष इत्यादौ राज पदार्थः पुरुषपदार्थेन सह सम्बद्धः अस्ति । अत्र आभ्याम् आकाङ्क्षयां परस्परं राजपदार्थः पुरुषपदार्थेन सह सम्बद्धः अस्ति । समासादिपदविधिः समर्थपदे सम्भवति । इदज्च सामर्थ्यद्विविधम्-व्यपेक्षा एकार्थीभावश्च । समस्ते यत् यत् पदम् एकीभूतं, तस्य तस्य पदस्य एव शक्त्या विशिष्टार्थबोधः सम्पद्यते इति व्यपेक्षावादीनां नैयायिकादीनां मतम् ।

एतन्मते पदशक्त्या एव निर्वाहे समासे अतिरिक्ता शक्तिः न स्वीक्रियते । किन्तु शाब्दिकानां मते तु समस्ते पदे पदशक्त्यतिरिक्ता विशिष्टार्थबोधिका अतिरिक्तरूपेण समुदाशक्तिः अभिमता विद्यते । यथा नैयायिकादीनां मतानुसारम्-राजपुरुषः इति समस्तपदस्य विशिष्टार्थः अस्ति - राजनिरुपितस्वत्वाश्रयः पुरुषः अथवा स्वत्वसम्बन्धेन राजवान् पुरुषः । अत्र ड्सपदस्य स्वत्वम् अर्थः, राजन् इति पदस्य राजरूपः अर्थः । राजरूपस्य अर्थस्य निरुपितत्वसम्बन्धेन ड्स्विभक्तेः स्वत्वरूपे अर्थे अन्वयः । स्वत्वस्य च आश्रयत्वसम्बन्धेन पुरुषे अन्वयः । तथाहि राजनिरुपितस्वत्वाश्रयः पुरुषः इति बोधः । अथवा ड्स्विभक्तिः पदसाधुमात्रम् इति मते राज पदार्थस्य आकाङ्क्षया स्वत्वसम्बन्धेन पुरुषे अन्वयः । तेन स्वत्वसम्बन्धेन राजवान् पुरुषः इति विशिष्टार्थलाभः । राजपुरुष- इत्यत्र शाब्दिका समासादि पदविधिषु अतिरिक्तां समुदायशक्तिं स्वीकुर्वन्ति । अर्थात् राजपुरुषः इति यः पदसमुदायः, तस्यैव समुदायस्य शक्त्या विशिष्टार्थबोधः भवति, न तु समुदायघटकराजादिपदशक्त्या तदेवं समुदाशक्तिं ज्ञात्वा एकार्थीभावरूपं सामर्थ्यभेदम् अङ्गीकरोति ।

प्रक्रियावेलायां प्रत्येकम् अर्थवत्वेन पृथग् गृहीतानां पदानां समुदायशक्त्या विशिष्टस्य एकार्थस्य बोधनशक्तिः एव एकार्थीभावसामर्थ्यम् । अस्यां स्थितौ एव समासप्रक्रिया आरभ्यते । अत्र प्रत्येकम् राजन् इस् पुरुष सु इति पदद्वयम् अर्थवत् अस्ति । तयोः पदयोः समुदायः, समुदाये विशेषणविशेष्यभावापन्नस्य राजसम्बन्धिपुरुषः इत्यस्य एकार्थस्य बोधनशक्तिः वर्तते । असौ एव एकार्थीभावसामर्थ्यपदेन उच्यते । वस्तुतुः अयमेकार्थीभावः राजपुरुष इत्यादिवृत्तौ एव तिष्ठति, तथापि तस्याः वृत्ते कल्पना अलौकिकविग्रहवाक्ये एव । तेन परिनिष्ठितानां पदानां राजपुरुषादीनां साधुत्वं भवति । यतो हि सिद्धानां शब्दानामन्वाख्यानं व्याकरणम् । राजपुरुषादिपदं सिद्धपदम् अस्ति । एतस्य अन्वाख्यानार्थं सूत्रप्रवृत्ति अभीष्यते । समासादिविधायकसूत्राणि न तावत् प्रवृत्तानि भवितुं शक्नुवन्ति । राजपुरुषः इति पदे यःविद्यमानःएकार्थीभावः, स पूर्वः तदीये अलौकिकविग्रहवाक्ये एव परिकल्पयते । तत्पश्चात् सामर्थ्यं दृष्ट्वा षष्ठी इत्यादिसूत्रेण समासः, ततः प्रातिपदिकत्वात् सुपो धातुप्रातिपदिकयोः इति विभक्तिलुकि नलोपे विभक्तिकार्यं च कृते राजपुरुषः इति पदं निष्पन्नम् । तदेवं समस्तरूपस्य साधनाय अलौकिकविग्रहवाक्ये एकार्थीभावकल्पना क्रियते ।

विशिष्टा अपेक्षा व्यपेक्षा उच्यते । यत्र द्वयोः अर्थयोः परस्परम् अपेक्षा (सम्बन्धः) भवति, तादृशस्य सम्बन्धार्थस्य यः सम्बन्धः, अथवा सक्तिः तदेव व्यपेक्षासामर्थ्यम्- इति बोध्यम् । पृथगर्थोपस्थापकानां पदानाम् आकाङ्क्ष्या अन्वितार् बोधनशक्तिः व्यपेक्षा । व्यपेक्षासामर्थ्यम् चेदं राजःपुरुषः इत्यादौ असमस्तपदे लौकिकविग्रहे तिष्ठति, एकार्थीभावसामर्थ्यं च राजपुरुषः इत्यादौ समस्तपदे तिष्ठति- इति प्रथितम् एव । व्यपेक्षायां राजःपुरुषः इत्यत्र राजन् शब्दः राजरूपम् अर्थं वक्ति । पुरुषशब्दः पुरुषरूपम् अर्थं वक्ति ड्स्विभक्तिः पदसाधुत्वाय , अथवा स्वत्वमर्थः एवज्च आकाङ्क्ष्या स्वत्वसम्बन्धेन राजवान्पुरुषः, अथवा राजनिरुपितस्वत्वाश्रयः पुरुषः इति व्यपेक्षापक्षीय बोधः . आकाङ्क्ष्या च एकपदार्थज्ञाने सति अस्य पदार्थस्य अन्वययोग्यः अर्थः कः? इति इच्छारूपा । इयमेव आकाङ्क्ष्या वाक्यशक्तेः बोधिका भवति । तथाहि अभीप्सितः अर्थः आकाङ्क्ष्या एव समासादौ लब्धः भवति, इति कृत्वा अतिरिक्तरूपेण विशिष्टसमुदायशक्तिं एकार्थीभावरूपा न स्वीकरत्व्या, इति नैयायिकादीनां व्यपेक्षावादिनां मतम् । **अत्रोच्यते-समासे** शक्त्यस्वीकारे विशिष्टस्यार्थवत्वाभावेन प्रातिपदिकत्वं न स्यात् । अत एवार्थवत्सूत्रे भाष्ये अर्थवदिति किम् अर्थवतां समुदायोऽनर्थकः-दशादिमानि षडपूपाः कुण्डमऽजाजिनम् ।(म.भा.१/२/४५) इति प्रत्युदाहतम् । एवज्च राजपुरुषपदयोस्त्वन्मते प्रत्येकमर्थवत्तेऽपि समुदायस्य दशादिमादिवदनर्थक-त्वात्प्रातिपदिकत्वानापत्तेः । न च कृत्स्वूत्रे समासग्रहणात् प्रातिपदिकसञ्ज्ञेति वाच्यम् । तस्य नियमार्थताया भाष्यकृतैव प्रतिपादितत्वात् । अन्यथासिद्धिं विना नियमायोगात् । अत एव राजः पुरुषो देवदत्तः पचतीत्यादि-वाक्यस्य मूलकेनोपदंशमित्यादेशं न प्रातिपदिकत्वम् । किञ्च समासे शक्त्यसम्बन्धरूपलक्षणाया अप्यसम्भवेन लाक्षणिकार्थवत्त्वस्या-प्यसम्भवेन सर्वथा प्रातिपदिकत्वाभाव एव निश्चितः स्यादिति स्वाद्यनुत्पत्तौ, अपदं न प्रयुज्जीत इति भाष्यात्समस्तप्रयोगविलयापत्तेः ।

यत्तु-पदार्थःपदार्थेन इति वृत्तस्य विशेषणयोगो न इति वचनद्वयेन ऋद्धस्येत्यादिविशेषणान्वयो न भवति, तत्तु समासे एकार्थीभावे स्वीकृतेऽवयवानां निरर्थकत्वेन विशेषणान्वयासम्भवात् फलितार्थपरम् ।

यत्तु-प्रत्ययानां सन्निहितपदार्थगतस्वार्थबोधकत्वव्युत्पत्तिरिति, तन्न । उपकुम्भम् अर्धपिल्लीत्यादौ पूर्वपदार्थे विभक्त्यर्थान्वयेन व्यभिचारात् । मम तु प्रत्ययानां प्रकृत्यर्थान्वितस्वार्थबोधकत्वव्युत्पत्तेर्विशिष्टोत्तरमेव प्रत्ययोत्पत्तेर्विशिष्टस्येव प्रकृतित्वात् विशिष्टस्यैवार्थवत्वाच्च न दोषः ।

किञ्च राजपुरुषादौ राजपदादेः सम्बन्धिनी सम्बन्धे वा लक्षणा ? नाद्यः राजःपुरुषः विवरणविरोधात् । वृत्तिसमानार्थवाक्यस्यैव विग्रहत्वात् । अन्यथा तस्माच्छक्तिनिर्णयो न स्यात् । नान्यःराजसम्बन्धरूपपुरुष इत्यन्यप्रसङ्गात् ।

अत्र कृत्तद्वित्समासैकशेषसनाद्यन्तधातुरूपाः पञ्च वृत्तयः सन्ति । अयं विभागः प्राचीनमतानुसारेण । नवीनास्तु-एकशेषवृत्तित्वं नेच्छन्ति । परार्थान्वितस्वार्थोपस्थापकस्यैव वृत्तित्वात्, तस्य च तत्राभावात् । अत एव समर्थसूत्राधिकारत्वपक्षे एकयसेषासङ्ग्रह उक्तो भाष्ये । वृत्तिद्विधा जहत्स्वार्थाऽजहत्स्वार्थं च । अवयवार्थनिरपेक्षत्वे सति समुदायबोधिकात्वं जहत्स्वार्थत्वम् । अवयवार्थसंवलितसमुदायार्थबोधिकात्वमजहत्स्वार्थत्वम् । स्थन्तरं सामवेदः शश्रूषा सेवा इति पूर्वस्या उदाहरणम्

। समासादिषु पञ्चु विशिष् एव शक्तिरनत्ववयवे, रथन्तरं, सप्तपर्णः शुश्रूषेत्यादौ अवयवा-र्थनुभवाभावात् । नैयायिकमीमांसादयस्तु-समासे शक्तिं न स्वीकुर्वन्ति । राजपुरुष इत्यादौ सम्बन्धभानार्थमेव समुदायशक्तिः स्वीक्रियते । तत्र च समुदायशक्तिमन्तरापि राजपदस्य राजसम्बन्धिनि लक्षणायां सम्बन्धभानसम्भवे तदर्थं समुदायशक्तिर्न स्वीकार्या । तन्न, समासे शक्त्यस्वीकारे विशिष्टस्यार्थवत्वाभावेन प्रतिपदिकत्वं न स्यात्, एवञ्च दशदाढिमादिसमुदायस्य वृत्तिमत्वरूपार्थवत्वाभावान् प्रतिपदिकत्वं भवति ।

भट्टमतानुयायिनस्तु-समासेषु न शक्तिः, न वा लक्षणा, किन्तु समासोपस्थापितविग्रहवाक्यादेव बोधः श्लोकादान्वयवाक्यादिवत् । अत एव रामस्तत्पुरुषं बहुत्रीहिं महेश्वरः । अन्ये ऋषयः सर्वे कर्मधारयमूर्चे इत्यादौ विग्रहवाक्योपस्थित्यैव बोधः । एवं विग्रहसन्देहे बोध सन्दोहोऽप्युपपद्यते इति वदन्ति, तदपि न, विग्रहवाक्यमजानतामपि समासतोऽर्थबोधदर्शनाच्छक्तिमन्तरा तद्वोधानुपपत्तेः ।

किञ्च अन्यपदार्थे च सञ्ज्ञायाम् इत्यादीना उन्मत्तगड्गम्, लोहितगड्गम्, अरण्यतिलका इत्यादौ वाक्येन संज्ञानवगमादिह नित्यसमास इत्युक्तम् । अत्र विग्रहवाक्यात् संज्ञावगमाभावेन समासशक्तिस्वीकारमते न निर्वाह इत्यवश्यं विशिष्टशक्तिस्वीकार्यः ।

समासे खलु भिन्नैव शक्तिः पड्कजशब्दवत् ।

बहूनां वृत्तिधर्माणां वचनैव साधने

स्यान्महद् गौरवं तस्मादेकार्थीभाव आश्रितः ॥ वै. भू. का. ३१ इति ।

सन्दर्भग्रन्थसूची-

१. परमलघुमञ्जूषा पृष्ठ सं. २९३-२८९९
२. परमलघुमञ्जूषा-ज्योत्सनाटीका पृष्ठ सं. २०३-२१५
३. वैयाकरणसिद्धान्तलघुमञ्जूषायाः भूमिकायाम् पृष्ठ सं. १४
४. समर्थनूत्रभाष्यम् पृष्ठ सं. ३२८-३४९
५. समासस्तदव्ययीभावश्च पृष्ठ सं. २४-३५
६. वैयाकरणभूषणसारस्य कारिका सं. ३१
७. वैयाकरणसिद्धान्तदिग्दर्शनम् पृष्ठ सं. ३५६-३६३
८. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी (मूलम्) पृष्ठ सं. ९८
९. प्रौढनिबधसारभम् पृष्ठ सं. १४२-१४६
१०. अष्टाध्यायी २. १. १
११. विद्यारशिमः पत्रिका पृष्ठ सं. ०७-११
१२. सद्विद्या पत्रिका पृष्ठ सं. ४९-५५
१३. हरिप्रभा पत्रिका पृष्ठ सं. ५३-५७
१४. सांख्यकारिका सं. ०६
१५. योगदर्शनम् १/२
१६. वेदान्तपरिभाषा पृष्ठ सं. १३
१७. शक्तिवादः पृष्ठ सं. ०६

व्याकरणविभाग: राष्ट्रीयसंस्कृतसंस्थानम् (मा.वि.) क.जे.सोमैयासंस्कृविद्यापीठम् मुम्बईपरिसरः

सोमनाथ ज्योतिर्लिङ्ग का ऐतिहासिक एवं वास्तुशास्त्रीय विश्लेषण

एडॉ.आशीष कुमार चौधरी

सोमनाथ मन्दिर के प्राचीन इतिहास व ऐतिहासिक तथ्यों को तलाशने के लिए मन्दिर के पुराने ढाँचे को हटाकर उत्खनन करने का संकल्प सोमनाथ ट्रस्ट द्वारा किया गया। उत्खनन में कुमारपाल निर्मित पाँचवे मन्दिर के नीचे दो अन्य मन्दिर के अवशेष प्राप्त हुए।¹ इन तीनों मन्दिरों से पूर्व हुए अन्य निर्माण कार्य के संकेत भी प्राप्त हुए। प्राप्त अवशेषों में गर्भगृह की दीवार पर एक के ऊपर एक जल निकास के तीन छिद्र पाये गये, जिससे यह सिद्ध हुआ कि मन्दिर का पुनः पुनः निर्माण एक ही स्थान पर हुआ। जलनिकास के छिद्र व ब्रह्मशिला ने यह भी सिद्ध किया कि यह निर्विवाद शिवमन्दिर ही था।² उत्खनन से प्राप्त अवशेषों ने भद्रकाली लेख की पुष्टिता करते हुए मन्दिर के निश्चित स्थान के प्रमाण दिए। लेख के अनुसार कुमारपाल ने भीम निर्मित मन्दिर का जीर्णोद्धार करके नए मन्दिर का निर्माण किया। सभी मन्दिरों की ब्रह्मशिला एक ही स्थान पर होना हिन्दू परम्परा का संकेत देता है कि चाहे मन्दिर का पुनर्निर्माण हो, लिङ्ग का स्थान तो वही रहता है।³ प्राचीन मन्दिर को ध्यान में रखकर मन्दिर में तीन खाईयाँ खोदी गयीं।

1. **गर्भगृह के उत्तर दक्षिण –** गर्भगृह में 155 फीट लम्बी और 5 से 10' चौड़ी खाई खोदी गयी।⁴ कई जगह तो जमीन के ठोस तल की मिट्टी तक पहुँचने के लिए 17 फीट तक नीचे तक जाना पड़ा।⁵
2. **मण्डप में उत्तर दक्षिण –** मण्डप में 344 फीट लम्बी और 8 से 15 फीट चौड़ी खाई खोदी गई, जो कई जगह 16-6 फीट गहरी थी।⁶

उत्खनन में कुमारपाल निर्मित मन्दिर के नाचे दो अन्य मन्दिरों के अवशेष प्राप्त हुए। इन तीनों मन्दिरों से पूर्व भी वहाँ कुछ निर्माण कार्य हुआ था।⁷ उसके भी संकेत प्राप्त हुए। गर्भगृह की दीवार पर एक के ऊपर एक, जलनिकास के तीन छिद्र पाये गये जिससे भी यहीं सिद्ध हुआ कि मन्दिर का पुनः पुनः निर्माण एक ही स्थान पर।⁸ 1969 ई.में कुमारपाल द्वारा निर्माण किया गया मन्दिर, जिसमें बारबार कुछ न कुछ कार्य किया गया और खण्डित होने पर जिसका जीर्णोद्धार किया गया।⁹

प्रथम खण्ड – निर्माण का प्रथम दौर

मंदिर –

निर्माण के प्रारम्भिक दौर में मन्दिर 90 फीट चौड़े कांजोर पत्थरों की नींव पर खड़ा किया गया जो जमीन के नीचे तत्कालीन भूतल से 13 फीट नीचे तक थी।¹⁰ उत्खनन में उस समय 2.5 ' फीट ऊँचाई की दो दीवारें मीली।¹¹ जल निकास मार्ग का नाप 4.5"x6" था।¹² जल निकास मार्ग गर्भगृह की उत्तरी दीवार पर था। ब्रह्मशिला, समभुज कांजोर पत्थर पर स्थित थी। उसके ठीक नीचे जो खाली जगह थी छोटे-छोटे कंकड़ और पत्थर के क्रमिक स्तरों से नींव तक भर दिया गा था।¹³

मण्डप – मंदिर की तरह मण्डप भी कांजोर पत्थरों की नींव पर खड़ा किया गया था। उसकी नींव जमीन में 12.5 फीट तक थी।¹⁴ मण्डप की सबसे ज्यादा चौड़ाई 56 फीट की थी।¹⁵ उसकी अनुमानित प्लीथ 5'.6" की होगी जिससे 3.2" की प्लीथ मिली प्रथम मन्दिर की प्लीथ बुरी तरह टूट जाने पर दूसरे मंदिर के निर्माण समय उसे निकाल दिया गया होगा।¹⁶ मण्डप का स्तर 5'.6" ऊँचा था।¹⁷ मण्डप के तीन स्तम्भों की पीठिका के अवशेष भी प्राप्त हुए जो 1'.7" समचतुष्कोण थे।¹⁸ दो अवशेषों पर पत्तियों की आकृति थी। मण्डप के भूतलस्थित पत्थरों में पिघले सीसे के अवशेष पाये गये।¹⁹

दूसरा खण्ड – निर्माण का दूसरा दौर –

मंदिर निर्माण के द्वितीय दौर में, मन्दिर निर्माण अन्तर्गत गर्भगृह में कुछ परिवर्तन किये गए। पूर्व मन्दिरों के जीर्ण अवशेषों पर ही पुनर्निर्माण करने की वजह से अन्दर और बाहर दोनों ओर का स्तर उठाया गया। जिससे जल निकास मार्ग पूर्व मन्दिर के जलनिकास मार्ग से 1'.5" ऊपर आया। वह 4'.5" चौड़ा और 5" ऊँचा था।²⁰ बाहर की ओर से जलनिकास छिद्र द्वारा पानी, पत्थर के तराशे गये कुण्ड में पड़ता था। पूर्व मन्दिर का लिंग उखाड़ कर तोड़ दिया गया था। इसलिए नए लिङ्ग का स्थापना की गई।²¹

मण्डप – इस निर्माण काल में मण्डप पूर्वमन्दिर जितना ही पाया गया उसकी प्लीथ 5".6" की थी पूर्व मन्दिर की बची हुई आधी प्लीथ पर ही उठाई गयी थी।²² मण्डप का नल 3".9" ऊपर उठाई गई। दोनों स्तरों के बीच की जगह पत्थरों से भर दिया गया।²³ उत्खनन में वहाँ से तराशे गए पत्थर पाये गए जो लूट गये पूर्व मन्दिर के अवशेष थे। अष्टकोणीय छह स्तम्भों की नींव मीली जो 1.3 वर्गकिलोमीटर थी।²⁴ एक विशेषता यह भी पायी गई कि मन्दिर की दक्षिण ओर देवताओं की आकृतिवाले शिल्प और उत्तर की ओर पुण्य की आकृतिवाले शिल्प

तराशे गए। पाये गये तीन शिल्प अवशेषों में एक शिव त्रिपुशंतक का और दूसरा हकुलेश्वर का शिल्प था।²⁴ तीसरा बुरी तरह जीर्ण हो चुका था।

तीसरा खण्ड निर्माण का तीसरा दौर

मन्दिर निर्माण के तीसरे दैर में कुमार पाल व्दारा ई.स. 1169 में निर्मित मन्दिर का विस्तृतीकरण किया गया।²⁴ पर गर्भगृह का विस्तार नहीं किया गया। प्रदक्षिणा मार्ग 12 फीट तक विस्तृत किया गया। गर्भगृह का स्तर ऊपर नहीं उठाया गया क्योंकि 1030 ये 1131 के बीच मन्दिर को क्षति पहुँचे ऐसा कोई आक्रमण नहीं हुआ था।²⁵ इस निर्माण में काले वेसालट पत्थरों का उपयोग किया गयाय गर्भगृह का तल जहाँ-जहाँ जर्जरित हो गया था, वहाँ काले पत्थर लगाये गए। दो अर्धगोलाकार काले पत्थरों से पिठिका का निर्माण किया गया जिसके बीच लिङ्ग स्थित था। बाहर की ओर प्रदक्षिणा मार्ग का स्तर 9 से 11 ऊपर उठाया गया।²⁶ गर्भगृह की चौड़ाई 72 फीट कीथी। पूर्व में दो मन्दिरों के दो जलनिकास छिद्रों से ठीक 1-10 ऊपर की और तीसरा छिद्र पाया गया जो पूर्व जलमार्ग जितना ही चौड़ा था।²⁷ 3.5 फीट समचोरण नयी ब्रह्मशीला के स्तर के अनुपात्र में उसका स्तर ऊँचा उठाया गया।²⁸

मण्डप

मण्डप में किये गए उत्खनन में कुमारपाल निर्मित मन्दिर और असके बाद हुए क्रमिक जीर्णोद्धार के अवशेष पाये गए। इस निर्माण कार्य में मण्डप को 74 फीट विस्तृत किया गया। मन्दिर की दक्षिण और उत्तर दोनों ओर 6.5 चौड़ी सीढियाँ बनाकर प्रवेश व्दार बनाये गये।²⁹ मण्डप का निर्माण ग्यारहवे शताब्दी के उत्तरार्ध में प्रचलित गुजरात की स्थापत्यशैली में किया गया।³⁰ उत्खनन में पाया गया कि दक्षिण प्रवेशद्वार की सीढियाँ नष्ट हो चुकी थी। दीवार की नींव 40 फीट तक चौड़ी थी। ऊँचाई फीट तक थी। एक काले पत्थर का 1647 का एक अधूरा लेख पाया गया, जो देवनागरी लिपि में लिखा था। इससे यह प्रतिपादित हुआ कि उस समय तक मन्दिर का उपयोग हो रहा था। इन तीन मन्दिरों को पूर्व भी उस स्थान पर कुछ निर्माण कार्य हुआ था। ऐसे प्रमाण भी प्राप्त हुए थे। उत्खनन में ईसा की पहली सदी में उपयोग में लिए जाने वाले बरतनों के कुछ टुकड़े प्राप्त हुए उसी के आधार पर कुछ विद्वानों ने मन्दिर का निर्माण ईसा की पहली सदी का भी बहलाया।

सन्दर्भसूची

1. Joshi, Rakesh; History of Gujarat, P-228	16. तत्रैव, पृ. 313
2. तत्रैव पृ. 229	17. Gupta, Alok; History of India, Vol-2, P.194
3. तत्रैव, पृ. 230	18. तत्रैव, पृ. 196
4. तत्रैव, पृ. 231	19. Joshi, Rakesh; History of Gujarat, P. 248
5. तत्रैव, पृ. 233	20. तत्रैव, पृ. 275
6. Munsi, M.M.; Somnath, PP. 224	21. तत्रैव पृ. 283
7. तत्रैव, P. 231	22. Munsi, M.M.; Somnath, PP-344
8. तत्रैव, P. 231	23. तत्रैव, पृ. 349
9. Gupta, Alok; History of India, Vol-2, PP-168	24. तत्रैव, पृ. 350
10. तत्रैव, पृ. 170	25. तत्रैव, P. 351
11. तत्रैव, पृ. 172	26. तत्रैव, P. 352
12. Joshi, Rakesh, History of Gujarat, P. 239	27. Joshi, Rakesh; History of Gujarat, Vol-2, PP. 292
13. तत्रैव, पृ. 302	28. तत्रैव, पृ. 299
14. तत्रैव, पृ. 303	29. तत्रैव, पृ. 302-304
15. तत्रैव, पृ. 312	30. Munsi, M.M.; Somnath, PP. 355

असि.प्रो.ज्योतिष विभाग .राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान,क.जे.सोमैया.सं.वि.

काव्यशास्त्र का अनुशीलन

किरण मिश्रा

काव्य वाणी का श्रृंगार है। स्वरूप के विचार से काव्य जितना व्यापक है, उतना ही सूक्ष्म भी। धात्वर्थ के विचार से काव्य का अर्थ है- कवि द्वारा सम्पन्न किया गया समस्त कार्य। यह काव्यकृतियों के विक्षेपण के आधार पर समय-समय पर उद्घायित सिद्धांतों की जानराशि है। युगानुरूप परिस्थितियों के अनुसार काव्य और साहित्य का कथ्य और शिल्प बदलता रहता है; फलतः काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों में भी निरंतर परिवर्तन होता रहा है। भारत में भरत के सिद्धांतों से लेकर आज तक और पश्चिम में सुकरात और उसके शिष्य प्लेटो से लेकर अद्यतन "नवआलोचना" (नियो-क्रिटिसिज्म) तक के सिद्धांतों के ऐतिहासिक अनुशीलन से यह बात साफ हो जाती है। भारत में काव्य नाटकादि कृतियों को 'लक्षण ग्रंथ' तथा सैद्धांतिक ग्रंथों को 'लक्षण ग्रंथ' कहा जाता है। ये लक्षण ग्रंथ सदा लक्ष्य ग्रंथ के पश्चाद्वावनी तथा अनुगामी हैं और महान् कवि इनकी लीक को चुनौती देते देखे जाते हैं। काव्यशास्त्र के लिए पुराने नाम 'साहित्यशास्त्र' तथा 'अलंकारशास्त्र' हैं और साहित्य के व्यापक रचनात्मक वाडमय को समेटने पर इसे 'समीक्षाशास्त्र' भी कहा जाने लगा। मूलतः काव्यशास्त्रीय चिंतन शब्दकाव्य (महाकाव्य एवं मुक्तक) तथा दृश्यकाव्य (नाटक) के ही सम्बंध में सिद्धांत स्थिर करता देखा जाता है। अरस्तू के "पोयटिक्स" में कामेडी, ट्रैजेडी, तथा इपिक की समीक्षात्मक कसौटी का आकलन है और भरत का नाट्यशास्त्र केवल रूपक या दृश्यकाव्य की ही समीक्षा के सिद्धांत प्रस्तुत करता है। भारत और पश्चिम में यह चिंतन ई.पू. तीसरी चौथी शती से ही प्रौढ़ रूप में मिलने लगता है जो इस बात का परिचायक है कि काव्य के विषय में विचार विमर्श कई सदियों पहले ही शुरू हो चुका था।

काव्यकृति मूलतः तिहरे आयाम से जुड़ी है – काव्य, काव्यकर्ता (कवि), काव्यानुशीलक। जहाँ तक नाट्यरूप काव्य का संबंध है, काव्यकर्ता के साथ उसमें नाट्य प्रयोगकर्ता नटादि का भी समावेश हो जाता है। काव्यशास्त्रीय चिंतकों का ध्यान इन सभी पक्षों की ओर सदा जाता रहा है। सबसे पहला प्रश्न जो कवि के संबंध में उठता है, वह यह है कि कवि या कलाकार अन्य मानव, धर्मोपदेशक, दार्शनिक, वैज्ञानिक, राजनीतिक विचारक से किस बात में विशिष्ट है और क्यों खास प्रकृति के व्यक्ति ही कवि या कलाकार बन पाते हैं? दूसरे शब्दों में, कवित्वशक्ति के हेतु क्या है। सुकरात और प्लेटो कवित्वशक्ति को दैवी आवेश की देन मानते हैं, अध्ययन और अभ्यास का प्रतिफल नहीं। भारत के काव्यशास्त्री काव्यरचना में प्रतिभा को प्रधान हेतु मानते हुए भी इसके साथ व्युत्पत्ति और अभ्यास को भी कम महत्व नहीं देते। परंपरावादी आलोचक केवल प्रतिभा को काव्यशक्ति का हेतु नहीं मानते। दूसरा महत्वपूर्ण प्रश्न है, कविता का प्रयोजन क्या है? अखिर कवि कविता क्यों करता है? इस संबंध में चिंतकों के दो दल हैं – परंपरावादी चिंतक काव्य का लक्ष्य या प्रयोजन नैतिक उपदेश की प्रतिष्ठा मानते हैं। काव्य द्वारा कवि किन्हीं मूल्यों की स्थापना करना चाहता है, ठीक उसी तरह जैसे धार्मिक उपदेशक। किन्तु फर्क यह है कि उसकी कृति शैलीशिल्प की दृष्टि से रमणीय और रसमय होने के कारण धर्मग्रंथों या नीतिग्रंथों से विशिष्ट बन जाती है। स्वच्छंदतावादी चिंतक इसे नहीं स्वीकारता। वह कवि को उपदेशक नहीं मानता। उसके अनुसार कवि सर्जक है, सृष्टिकर्ता है, जो ब्रह्म से भी विशिष्ट है। वह अपनी सृष्टि, अपनी कलाकृति के माध्यम से हमारे सामने रखता है। वस्तुतः वह अपनी अनुभूतियों को काव्य के द्वारा वाणी देना चाहता है। काव्य और कुछ नहीं, उसकी समस्त अनुभूतियों का सारभूत तत्त्व और उसके अंतस् में उमड़ते-घुमड़ते भावों का स्वतः बहा हुआ परिवाह मात्र है। पूर्व और पश्चिम के प्रायः सभी मतमतांतर इन दो खेवों में मजे से समेटे जा सकते हैं। काव्य का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष वह कृति है, जो हमारे समक्ष चाक्षुष (नाटक में), श्रावण तथा बौद्धिक सन्निकर्ष का माध्यम बनती है और इस माध्यम से वह हमारे मन या संवित् (चेतना) को प्रभावित करती है। अतः काव्यशास्त्रीय चिंतन में यह वह प्रधान पक्ष है जिसके अनेक पहलुओं को लेकर पूर्व और पश्चिम के विचारक पिछले अढाई हजार वर्षों से ऊहापोह करते आ रहे हैं। सबसे पहला सवाल जो काव्य के कथ्य के विषय में उठता है, वह यह है कि काव्य में वर्णित घटनाएँ आदि कहाँ तक वैज्ञानिक सत्य से मेल खाती हैं। यह प्रायः सभी समीक्षक स्वीकार करते हैं कि काव्य में

तथ्य-कथन-प्रणाली का आश्रय नहीं लिया जाता। उसमें जिस सत्य का समुदाटन होता है, वह वास्तविक सत्य न होकर संभाव्य सत्य होता है। इसी आधार पर काव्यविरोधी कवि की कल्पना को भ्रमित या सत्य से बहुत दूर घोषित करते हैं। प्लेटो ने तो इसे सत्य से दुहरा दूर सिद्ध किया है। भारत के विचारकों ने काव्यकृति को भ्रांति नहीं माना हैं, यद्यपि एक स्थान पर भट्ट लोल्लट ने रससूत्र की व्याख्या करते हुए नाटक के अभिनय में राम आदि का अनुकरण करते नटों में राम आदि के भ्रांतिज्ञान का संकेत किया है। पश्चिम में इधर मनोविज्ञान के विकास के परिप्रेक्ष्य में काव्यशास्त्रीय चिंतन ने भ्रांतिवाले इस पक्ष को और अधिक मजबूत किया है। कहा जाता है, कला मात्र भ्रांति है (आर्ट इंज नथिंग बट इल्यूजन)। इसी से मिलता जुलता एक और मत भी है। कला कुछ नहीं महज सम्मोहन है (आर्ट इंज नथिंग बट हेल्प्यूसिनेशन)। इधर नृत्य विज्ञान के अध्ययन के आधार पर भी काव्य की सम्मोहिनी शक्ति पर जोर दिया जाने लगा है और यह मत प्रबल हो उठा है कि काव्य या कला में पुराने आदिम समाज के ओङ्जाओं के मंत्रों की तरह जादुई असर होता है (आर्ट इंज मैजिक)।

यहीं यह सवाल उठता है कि आखिर यह भ्रांति, सम्मोहन या जादुई असर, अगर हम पुराने विद्वानों के शब्द को उधार लेना चाहें तो काव्य का "चमत्कार", किन तत्वों के कारण पैदा होता है? काव्य मूलतः भाषा में निबद्ध होता है। भाषा शब्द और अर्थ का संक्षिप्त रूप है। अतः पहला सवाल यह उठेगा कि काव्य केवल शब्दमय है या शब्दार्थमय। हमारे यहाँ ये दोनों मत प्रचलित हैं। भामह, कुंतक, मम्मट जैसे चिंतक शब्द और अर्थ के सम्मिलित तत्व को काव्य मानते हैं, केवल शब्द को या केवल अर्थ को नहीं, क्योंकि काव्य में दोनों को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। इस मत के अनुसार काव्य को चमत्कारशाली या सम्मोहक बनाने के लिए शब्द और अर्थ दोनों की रमणीयता पर कवि को समान बल देना होगा। दूसरा मत काव्य की प्रभावान्विति में शब्द पर, अर्थात् उसके बौद्धिक पक्ष की अपेक्षा श्रवण पक्ष पर, अधिक जोर देता है।

संस्कृत कवि पंडितराज जगन्नाथ का यही मत है। यह मत उन लोगों का जान पड़ता है जो काव्य की लय (रिद्ध), शब्दचयन, छंद और श्रावण बिंबवता पर अधिक जोर देते हैं। पश्चिम के स्वच्छंदतावादी समीक्षक, विशेषतः फ्रांस के प्रतीकवादी कवि और आलोचक, साफ कहते हैं कि काव्य अर्थ या विचार से नहीं बनता बल्कि शब्दों से बनता है (पोयट्री इंज नाट मेड ऑव आइडियाज बट ऑव वर्ड्स)। अगर इस मत की तुलना हम ओङ्जाओं के निरर्थक शाबरजाल मंत्रों से करें तो पता चलेगा कि यहाँ भी अर्थ का कोई महत्व नहीं, अपितु शब्दों की लय, झाड़ फूँक करनेवाले ओङ्जा के मंत्रोच्चार का लहजा ही रोगी को प्रभावित कर मनश्चिकित्सा करता कहा जाता है। यही पद्धति मनोविज्ञेषणात्मक उपचार की भी है। काव्य के प्रभाव को पैदा करने में शब्द और अर्थ का विशेष महत्व माना गया है, इसलिए काव्यशास्त्रीय चिंतन में शब्द और अर्थ के परस्पर संबंध पर विचार करना लाजमी हो जाता है। शब्द का अपने परंपरागत अर्थ से नियत संबंध होता है। इस संबंध को हमारे यहाँ अभिधा व्यापार कहा गया है। किंतु भाषा में इस व्यापार के अतिरिक्त अन्य व्यापार भी कार्य करता देखा जाता है, जहाँ शब्द अपने नियत अर्थ को छोड़कर उससे संबद्ध किसी दूसरे अर्थ की प्रतीति भी करा सकता है, जिसे लक्षण व्यापार कहते हैं। वक्रोक्तिवादी कुंतक भी काव्य में उपात शब्द और अर्थ के व्यापार को साधारण अभिधा न मानकर विचित्रामिधा या वक्रोक्ति कहते हैं और इस वक्रोक्ति का विनियोग वर्ण, पद, वाक्य, अर्थप्रकरण, प्रबंध जैसे काव्यांगों में निर्दिष्ट करते हैं। कुंतक के इस विभाजन की मूल नीय वस्तुतः वामन के रीतिवादी सिद्धांत पर टिकी है। यह काव्य की संघटना या संरचना का विक्षेपण कर उसके उन अंगों के सम्मोहक तत्व को समुदाटित करती है जो काव्य सुनने या पढ़नेवाले को प्रभावित करते हैं। यह विक्षेपण एक ओर व्याकरण और भाषाशास्त्र से और दूसरी ओर कलाशास्त्रीय चिंतन से जुड़ा हुआ है। इधर अमरीका में जो संरचनावादी पद्धति की नई काव्यसमीक्षा चल पड़ी है, वह उसी दृष्टिकोण को लेकर चली जिसका सूत्रपात संस्कृत काव्यों के विवेचन के संबंध में हमारे यहाँ अपने-अपने ढंग से वामन, आनंदवर्धन और कुंतक कर चुके हैं। पश्चिम में परंपरावादी समीक्षक इसी तरह काव्य की समग्रता को प्रभाव की दृष्टि से नहीं आँकते और काव्य में अलंकार (फ़िर्गस), उक्तिवैचित्र्य (विट्), दूरारूढ़ कल्पना (फ़ैसी) को महत्व देते देखे जाते हैं। वहाँ भी इसा की दूसरी शती में एक ऐसा चिंतक हुआ है जिसने

काव्य की इस समग्रता के सिद्धांत को प्रतिष्ठापित किया था। लोंगिनुस के उदात्त संबंधी सिद्धांत का मूल भाव यही है। कवि और काव्य के बाद तीसरा तत्व काव्य का श्रोता या पाठक और नाटक का दर्शक है जिसे ध्वनिवादी के शब्दों में सहृदय कहा जाता है। सहृदय का अर्थ है समान हृदयवाला वह व्यक्ति जो काव्यानुशीलन के समय उसमें तन्मयीभूत होकर कवि के समान हृदयवाला बन जाए। उसकी यह समानहृदयता काव्य में वर्णित विशिष्ट पात्रादि या नायकादि से भी होती है। इस समानहृदयता को स्थापित करने के लिए भट्टनायक ने साधारणीकरण व्यापार की कल्पना की थी जिसे अभिनवगुप्त ने भी मान लिया है। भारत के इन रसवादियों के अनुसार काव्यानुशीलक के मानस में राग द्वेषादि रूप रज और तम गुणों का तिरोभाव हो जाता है तथा सत्य के उद्गेत्र से मन को विश्रांति का अनुभव होता है। अभिनवगुप्त इस स्थिति को योगियों की समाधिस्थिति के समान मानते हैं।

अपने यहाँ, रसदशा तक हम कैसे पहुँचते हैं, इसका अपने ढंग से मनोवैज्ञानिक विश्लेषण अभिनवगुप्त के यहाँ मिलता है। पर वह ढाँचा मात्र है। अभी हाल में हुए मनोविज्ञानगत शोधों के कारण इस पक्ष पर अधिक प्रकाश पड़ा है। मनोविज्ञान की एक विशेष शाखा, जिसमें शरीरक्रिया के आधार पर हमारे स्नायुकेंद्र के समुत्तेजन का अध्ययन किया जाता है और श्रावण, चाक्षुष, स्पार्शन, घ्राणज तथा रसनज बिंबों का अथवा उनकी कल्पना मात्र का हमारे मस्तिष्क पर कैसे प्रभाव पड़ता है और उससे हमारा मानस कैसे आंदोलित होता है, इसपर खोजें हुई हैं और होती जा रही हैं जो काव्य और कलाकृति का काव्यानुशीलक पर कैसा, क्यों और कैसे प्रभाव पड़ता है, इसके विवेचन में व्यस्त हैं। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होगा कि आज काव्यशास्त्रीय चिंतन का क्षेत्र कितना विस्तृत हो गया है। वह एक ओर व्याकरण, भाषाशास्त्र, कलाशास्त्र, दर्शन और छन्दशास्त्र के छोरों को छूता है, तो दूसरी ओर मनोविज्ञान और शरीरक्रिया विज्ञान से भी जा जुड़ा है। इतना ही नहीं, जब हम काव्य के ऐतिहासिक, सामाजिक प्रेरणास्रोतों की ओर भी ध्यान देने लगते हैं तो काव्यशास्त्र का दायरा और बढ़ जाता है और वह समाजशास्त्र, इतिहास तथा राजनीतिक चिंतन से भी जा जुड़ता है। यही कारण है कि आज के काव्यशास्त्रीय चिंतन में कई दृष्टिभिंगिमाएँ मिलेंगी। कुछ ऐसी हैं जो परंपरावादी पूर्वी या पश्चिमी सँचे में ढली हैं, कुछ पश्चिम के स्वच्छंदतावादी, कलावादी, भविष्यवादी या अस्तित्ववादी सिद्धांतों से जुड़ी हैं और कुछ या तो फ़रायड के मनोविश्लेषणवाद अथवा मार्क्स के सामाजिक यथार्थवादी दर्शन से संबद्ध हैं।

सन्दर्भग्रन्थसूची

1. काव्यशास्त्र दर्शन, पृ-2-8
2. काव्यपरम्परा-भूमिका खण्ड
3. मनोविज्ञान, एस.पी.गुप्ता भूमिका खण्ड
4. चाणक्यसूत्र 156
5. ईशावास्योपनिषद् 01
- 6 वृहदारण्यकोपनिषद् 3.1.6
- 7 वृहदारण्यकोपनिषद् 3.9.10
- 8 Sinha, B.R., Education and Development vol. I, Sarup and sons, New Delhi
- 9 Sarton, A History of Science, quoted in 'Materialism in the Vedas', p. 130.
- 10 Datta, Debabrata Datta, History of Indian Education, Bichitra Prakashani, Kolhata, 1997.
11. contribution of mithila to Sanskrit kavya and sahityasastra-pp1-9
12. History of mithila-pp58-92.
13. मनोविज्ञान, पी.डी.पाठक पृ 44-63

गवेषिका, मै.वि ल.ना. मि.वि दरभंगा।

मधुसूदनसरस्वत्याः अभिप्रायस्य श्रीमद्भागवतमूलकत्वप्रतिपादनम्

क्षुदेष्ना दाशः

आध्यात्मिकाधिदैविकरूपतात्रयपीडितस्य संसारिणः तादृशदुःखोच्छेदसाधनोपायावतरणमेव सर्वतन्त्राणां मौलिकतात्पर्यमिति अपाततया प्रतिपादयितुं पार्यते। नित्यश्च सः दुःखोच्छेदो मोक्ष इत्याख्यायते। पुरुषार्थेषु चतुर्षु श्रेष्ठममुं तुरीयं संपादयितुं मुमुक्षुं सज्जीकर्तुं नानाविधिर्दर्शनानि स्वस्वप्रमाणानुगुणनानाविधिपथो निर्दिशन्ति। आस्तिकदर्शनानां तावन्मुख्यं प्रमाणं वेदा एव। भिन्नवेदवाक्यानां भिन्नरीत्या गौणत्वं मुख्यत्वं च कल्पयित्वा तत्तद्वृष्टिविशिष्टानि विविधदर्शनानि एकैकरीत्या विभिन्नसंप्रदायेषु उपदिश्यन्ते। आस्तिदर्शनेषु वेदान्तदर्शनम् मुख्यतया उपनिशदः भगवद्गीतादिस्मृतयः, वेदान्तसूत्राणि च प्रमामिकृत्य प्रवर्तन्ते। व्यासर्षिप्रणीतवेदान्तसूत्रानुरोधेन विभिन्नोपनिषद्वाक्यानि गीताप्रमाणानि च नैकरीत्याग्रथित्वा अद्वैतविशिष्टाद्वैताद्यनेकशास्त्राणि संप्रवृत्तानि। अद्वैतवेदान्तदर्शने जीवब्रह्मात्मैक्यपरोक्षज्ञानमेव मोक्षः। तत्र च -भिद्यते हृदयग्रन्थिः चिद्यन्ते सर्वसंशयाः। क्षीयन्ते चास्य कर्मणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥१ (मुण्ड.२/२/४)

ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति ॥२ (मुण्ड.३/२/९) इत्यादि श्रुतिवाक्यानि प्रमाणानि तथा च -यथैधांसि समिद्भोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन। ज्ञानाग्निस्सर्वकर्मणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥३ (भ.गी.४/३७)

इत्यादिभगवद्गीतावाक्यान्यापि प्रमाणभावं भजन्ते। ज्ञानात् कर्मफलरूपस्य संसारस्य संपूर्णस्योच्छेदः प्रतिपाद्यतेऽत्र। नहि ज्ञानकर्मसमुच्चय आश्रितः। परमात्मन्यध्यस्तमज्ञानमेव सर्वप्रपञ्चस्य उपादानकारणम्। प्रपञ्चोऽविद्याकार्यमित्यर्थः। अज्ञानं हि ज्ञानेतैव नश्यति यथा प्रकाशेन तद्विरुद्धस्य तमसो नाशस्तथा। कर्णश्च अज्ञानविरोधात्वात् तन्नाशने कर्म नोपकुरुते। पुनश्च कर्मणा सम्पद्यमानानां लोकानामनित्यतां श्रुतिरेव दर्शयति- तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयते एवमेवामुत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते ॥४ (छान्दो.४/१/६) इत्यादि।

यथा ब्रह्मज्ञानात्परं पुरुषार्थं दर्शयति च- ब्रह्मविदाप्नोति परम् ॥५ (तैत्ति.२/१) इत्यादिः। कर्मणां ब्रह्मज्ञाने यद्यपि साक्षात्कारणत्वं नास्ति तथापि निष्कामकर्मानुष्ठानेन पापानि क्षीयन्ते। तदिदमुच्यते विवेकचूडामणौ - चित्तस्य शुद्धये कर्म नतु वस्तुपलब्धये । वस्तुसिद्धिर्विचारेण न किञ्चत्कर्मकोटिभीः ॥६ (वि.चू.११) एवच्च चित्तशुद्धयर्थं निष्कामकर्मण्युपयुज्यन्ते। आत्मासिद्धये एवं कर्मणां परम्परया कारणत्वं सिद्धयति। क्षीणकलमष एव शास्त्रे अधिकारी। तदिदं भण्यते भगवद्गीतायाम्-आरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते । योगारुदस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥७ (भ.गी.६/३) एवच्च क्रमः एव- निष्कामकर्मानुष्ठानेन काम्यनिषिद्धयोः त्यगात् क्षीणपापस्य चित्तस्य विवेके योग्यता यदा तदा सुदृढो नित्यानित्यवस्तुविवेको जायते। निष्कामकर्मानुष्ठानं ईश्वरस्य जपस्तुत्यदिकं प्रोच्यते। तदिदमुच्यते भगवद्भक्तिरसायने श्रीमधुसूदनसरस्वतीभिः भागवतपुराणक्षोकानां उद्धरणेन- भक्तियोगः पुरौक्तः प्रीयमाणाय तेऽनघः। पुनश्च कथिष्यामि मद्भक्तेः कारणं परम् ॥८ (भा.११/११/२१-२२)

एवं भागवतः गुणश्रवणनामकीर्तन-स्मरण-पादसेवनार्चना-वन्दन-दास्य सख्य-आत्मनिवेदनादिना अन्तःकरणशुद्धिः प्रजायते। ततः इहामुत्राफलभोगविरागः। ततः शमादिसम्पत्तिः। शमश्च वेदान्त श्रवणमनननिदिध्यासनादिषु उपेक्षितः। निदिध्यासनेन च निर्विकल्प साक्षात्कारः। अविद्यानिवृत्तिश्च तत्त्वज्ञानोदये भवति। तेन स्वात्मनि भ्रमसंशयौ क्षीयते। तदा अनारब्धानि कर्मणि नश्यन्त्येव ।

सत्त्वगुणनिरूपणम्-

कृष्णस्य प्रथमदर्शनसमयोत्पन्ना रतिः शरीरादि प्रथमतः अकर्णितेन वेणुरवेण उदीपना। अयं विषयः बहिर्पिडाक्षण्यता इति क्षोक द्रव्ये प्राक्तप्रतिपादितः। ततः हेमन्ते प्रथमेमासि ताभिः कात्यायनि व्रताचरणं रते बुधिं सूचयति। कृष्णगुणगानं ताभिः उद्दिपनं सूचयति ।

भगवांस्तदाभिप्रेत्य कृष्णो योगेश्वरः वयश्यैरावृतस्तत्र गतस्तत्कर्म सिद्धये ॥९ (भा. १०. २२-८)

श्यामसुन्दरते दास्यः किंकरवाम् इति भगवन्तमूचुः। सत्वगुणोऽपि वन्धाया। कल्प्यते अतः अभिमानत्यागः गुणत्यागश्च भक्तेन कार्यम्। देहाभिमानस्तु मोक्षप्रतिबन्धकः।

तासां तत्सौभागमदं वीक्ष मानं च केशवः । प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत ॥१० (भा. १०. २९-४८)

कामजेन शरीरसङ्गमेन चिद्धनकारणं सुखमुत्पद्यते इति सधूसूदनोक्तिः अत्रान्वेति। कान्तादि विषयेण्यस्ति कारणं सुखचिह्नम् इति अयं आशयः आनन्दात् भूतानि जायन्ते। पुनः तत्रैव विलीयन्ते। अतः कारणब्रह्मोत्पन्नानि कार्याणि तदभिन्नानि भवन्ति। मायावृत्तिरोधाने कारणं साक्षात् भवति। मायावरणम्भङ्गात् मोक्षप्रसादः। पुनश्च समागमानन्दः सत्वगुणप्रधानः गोपीभ्यः भगवता अनुगृहितः। तदानीं गोपीनां आनन्दातिशयः परां कोटिं अधिरूढः विस्तरस्तु दसमस्कन्धे द्वात्रिंशे निरूपितः। कामक्रोधादय सर्वेऽपि भगवत् संकल्पजन्या कदाचित् किञ्चित् प्रयोजनम् उदिश्य भगवान् तांस्तान् उत्पादयति संहरति च। एषः वृत्तान्तः वैरभक्तिविवरणावसरे हिरण्यक्षकश्यपुवृत्तान्ते दृश्यते।

रजोगुणनिरूपणम्-

'सपल्या दुःखशीलता' इति मधुसूदनः, रासपञ्चाध्यां भगवत्सम्भोगानन्तरं मनस्तु सौभाग्यमदम् अजायत। मदस्तु हर्षतिशयः। स च गर्वेहेतुर्भवति। भर्तुः सुखं यद्यपि सत्वगुणहेतुः तथापि अत्र तद्रजोगुणस्य हेतुरभूत्। प्राणिनः स्वामिन् लीनस्य सत्वादिगुणस्य ज्ञानं न भवति। अतो रजोगुणप्रशमाय भगवता स्वयं गोपीषु रजोगुणोद्दीपनं कृतं स्यात्। यतः भक्तोपकारकं चिकीषुः भगवान् तत्तद्वृणान् समयानुकूलं भक्तेषु उद्दीपयति। पश्चात् तान्नाशयति च गोपीनां दुःखवानुभूतिं विना असूयादि न भवेत्। अतः गोपीषु भगवता एव रजोगुणः उद्दीपयति इति अवगन्तम् भगवान् स्वयं भक्तेषु तत्तत् गुणान् उद्दीपयति इत्यत्र तृतीयस्कन्धेद्वारपालकशापवसरे सनकादीन् प्रति शापो मयैवविहितस्तदवैत विप्राः इति भागवद्वाक्यमेव प्रमाणम्। भगवदनुग्रहजातेन मदेन गोपीषु एकैकायापि अहमेव कृष्णस्यमता सर्वाभ्यः गरीयसी इति मतिरजायत। सा च मतिः तृष्णात्मिका भवकारिणी दुःखहेतुश्च। यथा वैद्यः रोगस्य शाश्वतिकनिवारणार्थं पीडामुद्दीपयति तथैव कृष्णोऽपि गर्वरूप रजोगुणप्रशमकं दुःखरूपरजोगुणं ताभिः रजस्तमसी गुणावनु भूते

एवं भगवता कृष्णलल्ब्धमाना महात्मनः। आत्मानं मेनिरे स्त्रीणां मानिन्येभ्यधिकं भुवि ॥११ (भा. १०. २९. ४७)

अथ 'सपल्यादुःखरूपता' इति यदुक्तं ततत्रिंशे अध्याये विस्तरेण निरूपितम्। कृष्णान्तर्धानिं स आरम्भ कृष्णपददर्शनावाधिकः शोकः केवलः विरहात्मिकः कृष्णः पुनदर्शनं यच्छति। मया सह क्रीडति इति विश्वासः सर्वस्य मनसि अभूत्। विप्रलम्भे यो विश्वासः भवति पुनः समागमपर्यन्तं स एव वियोगशृङ्गारः भवति।

कामिन्याः सुखथा भर्ता सपल्या दुखःरूपता तदलभात्तथाऽन्येन मोहत्वमनुभूयते ॥१२ (भक्ति. १. १७-१८)

दुःखं पौनः पुन्येन चिन्तनं ततो आनन्दः इति वकुं शक्यते। दुःखे पुण्येन चिन्तनं ततो आनन्दः चिन्तनादपि भगवदाग्रह इति विरहोऽपि भक्तेः उपाय भवति।

गतिस्मितप्रेक्षणभाषणादिषु प्रियाः प्रियस्य प्रतिरूढ मूर्तयः आसावन्त्वत्यवलास्तदात्मिका न्यवेदिषुः कृष्णविहार विभ्रमाः॥१३ यदा पुनः तासां दुःखं निर्वेदाय बभूव ततः अस्तु वा तस्य अन्योपभोगः। अस्माकं दर्शनमात्रमपि प्रयच्छतु इति तासु मतिरजायत। तदानि दुःखक्षयः अभूत्। ततः रजोगुणस्य हानिरभूत्। अथ तमोगुणः तासु अवशिष्टः।

तमोगुणनिरूपणम् –

कृष्णलाभात् मोहरूपस्तमोगुणः तासु स्थितिं प्रशनाय अवर्धत। स च गोपिकागीतरूपेण विस्तरेण वर्णितः। तमोगुणजन्यमोहः बाह्यशेकरूपेण बहिर्निष्कान्तः। एवं मलसि स्थितानां तासां भगवत् कीर्तनात् मतिः न चोक्तः। ततापि भगवदनुग्रह एवं कारणम्। अतः मोहोऽपि ज्ञानायाभूत्। एकत्रिंशेऽध्याये गोपिका गीतेषु तासां अर्तिः, भक्तिः मोहश्च सङ्कल्प्य वर्णितः तदबधि भगवदर्शनजन्यज्ञानस्य अपरिपाकात् एवं विध दुःखभावितिविमिति न मन्तव्यम्। किं तु आत्मनिवेदनम अपरिवेदनमेव तत्र दृश्यते। भगवद् प्राप्तावपिशरीरसंगमाभिलाष प्रार्थनं। तु मोहसूचकम्।

श्रीधरेण सर्वत्र गोपीवाक्यानि भगवत्पराणि व्याख्यातानि । तासां ज्ञानं न नष्टमिति सूचयितुमेव श्रीधरेण तथा व्याख्यातम् ।

जयति तेऽधिकं जन्मना ब्रजःश्रूयत इन्दिरा शश्वदत्र हि दयित दृश्यतां दिक्षु तावका स्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते ।¹⁴ (भा. १०. ३१. १२)

अत्रावधेयविषेऽयं वर्तते यत् द्विविधो हि विद्याधिकारी कृतोपास्तिरकृतोपास्तिश्च। इदं च स्पष्टतया उच्यते श्रीमद्भूदनसरस्वतीभिः गीताव्याख्यानावसे तत्र य उपास्यसाक्षात्कारपर्यन्तामुपास्तिं कृत्वा तत्त्वज्ञानाय प्रवृत्तः तस्य वासनाक्षयमनोनाशयोर्दुष्टरत्वेन ज्ञानादुर्ध्वं जीवन्मुक्तिः स्वत एव सिद्ध्यति। इदानिंतनस्तु प्रायेणाकृतोपास्तिरेव मुमुक्षुरात्मुक्यमात्रात्सहसा विद्यायां प्रवर्तते। योगं विना चिङ्गडविवेकमात्रेणैव च मनोनाशवासनाक्षयौ तात्कालिकौ संपाद्य शमदमादि संपाद्य श्रवणमनन्निदिध्यासनानि संपादयति। तैश्च दृढाभ्यस्तैः सर्ववन्धविच्छेदि तत्त्वज्ञानमुदेति। तत्त्वज्ञानेन च अविद्या ग्रन्थिरब्रह्मत्वं हृदयग्रन्थिः संशयाः कर्मण्यसर्वकामत्वं मृत्युः पुनर्जन्म चेत्यनेकविद्यो बन्धो ज्ञानान्विवर्तते। तथा च श्रुयते –

यो वेद निहितं गुहायां योऽविद्याग्रन्थि विकिरतीह सोम्य।¹⁵ (तैत्ति. २/१/१) तत्त्वज्ञानप्रभावतः अनारब्धानि आगामीनि च नस्यति। प्रारब्धकर्मविक्षेपाद्वासना तु न नस्यति। सा सर्वतो बलवती संयमेन उपसाम्यति। न संयमश्च धारणादित्रिकम्। केवलेनेश्वरप्रणिधानानेनापि समाधिः सिद्ध्यति योगसूत्रे तदुच्यते- 'ईश्वरप्रणिधानाद्वा' इति। समाधिसिद्ध्या च भवेन्मनोनाशो वासनाक्षयश्च।

इत्थञ्च एतावन्निरुपणेन किमायातमिति पृष्ठे कृतोपास्तिः यः विद्याधिकारी विद्यते तस्य तत्त्वज्ञानोदयेन द्रुतमेव जीवन्मुक्तिर्जायते। यश्च इतरः उपास्तिं विना श्रवणादिषु प्रवर्तते तस्य क्रोधाद्यनुपत्त्यर्थं दृढमनोनाशवासनाक्षयाभ्यां संयमः प्रयत्नसाध्यः। तत्र च भक्तिरूपयुज्यते। स च प्रेमभक्तः ज्ञानि एव भवति। तदिदमुच्यते भगवद्गीतायां- चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन । आर्ती जिज्ञासुरथर्थे ज्ञानी च भरतर्षम् ॥¹⁶ (भ.गी.-७. १६)

सन्दर्भग्रन्थाः

- 1.मुण्डकोपनिषदि. २/२/४
- 2.मुण्डकोपनिषदि. ३/२/९
- ³. श्रीमद्भगवतगीतायाम्. ४/३७
- 4.छान्दोग्योपनिषदि. ४/१/६
5. तैत्तिरीयोपनिषदि. २/१
6. विवेकचूडामणी. ११
7. श्रीमद्भगवतगीतायाम्. ६/३
- 8.श्रीमद्भगवते. ११/११//२१-२२
- ⁹ श्रीमद्भगवते. १०. २२-८
- 10 श्रीमद्भगवते. १०. २९-४८
11. श्रीमद्भगवते. १०. २९. ४७-४८
12. भक्तिरसायनम्. १. १७-१८
13. श्रीमद्भगवते. १०. ३०. ३
14. श्रीमद्भगवते. १०. ३१. १२
15. तैत्तिरीयोपनिषदि. २/१/९
16. श्रीमद्भगवतगीतायां. -७. १६

शोधच्छात्रा, अद्वैतवेदान्तविभागः, रा. स. विद्यापीठम् तिरुपतिः

संस्कृतशिक्षणे भाषायाः कौशलानि

कृहरिओम

विश्वेस्मिन् व्याप्तानां चेतनाचेतनानां भावाभिव्यक्तेः सम्पर्णसाधनानि भाषेत्यभिधीयते । परच्च भाषाविज्ञाने या भाषा गृह्यते सा साइकेतिकादिभिन्ना मानवीया व्यक्ता वाणी अस्ति । उक्तमपि—“वाग्वै समादपरमं ब्रह्म” । भाष्यते इति भाषा भाषधातोः “गुरोश्च हलः” इति अप्रत्यये टापि भाषा इति व्युत्पद्यते । यस्यार्थः “भाष व्यक्तायां वाचि” अस्ति । व्यक्तवाग्प्रेण यस्याः अभिव्यक्तिः क्रियते सा भाषेति कथ्यते । अथ सा “भाषणाद् हि भाषा” इत्यपि कथ्यते । स्वीटमहोदयः भाषायाः विषये स्वविचारं प्रस्तौति - “ध्वन्यात्मकशब्दैः विचाराणां प्रकटीकरणमेव भाषा” ॥ काव्यादर्शकर्त्ता आचार्यदण्डिना निगदितं काव्यादर्शं यत् - “वाचामेव प्रसादेन लोकयात्रा प्रवर्तते” इति । वस्तुतः अस्मदीया लोकयात्रा सुदेव्याः वारदेव्याः कृपयैव सम्भाव्यते । क्रमेस्मिन् स्वविचारं प्रकटितः आचार्येण यत् - “इदमन्धन्तमः कृत्लं जायेत भुवनत्रयम् । यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते ॥” ॥ अर्थात् यदि शब्दज्योतिः लोके न प्रकाशयेत् तर्हि सर्वत्र अन्धकारो भवेत्येवा । अस्यामेव श्रुखलायां भर्तृहरिणा अपि उक्तम् - “भाषयैव प्रकाशयते ज्ञानं, भाषां विना तु सविकल्पकं ज्ञानं नास्ति सम्भवं” । यथा - “न सौरस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते । अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते ॥” ॥ ऋग्वेदे भाषायाः सततशीलतायाः विषये निगदितं यत् - “सम्यक् स्रवन्ति सरितो न धेना अन्तर्हृदा मनसा पूयमाना:” ॥ अर्थात् भाषा हृदयेन मनसा च पूयमाना नदी प्रवाहतुल्या सततं प्रवहति, अर्थात् वाणी मनसा पवित्रा क्रियमाणा नद्याः प्रवाहवत् सततं वहति । अङ्कसफोर्ड एडवान्स्ड लर्नस डिक्षनरी एतस्यानुसारेण “Language is a system of sounds, words, patterns, etc. Used by humans to communicate thoughts and feelings.” परस्परं मानवानां मध्ये वस्तुनां विषये स्वेच्छागत्योश्च आदानप्रदानाय व्यक्तध्वनिसङ्केतैः यः व्यवहारः भवति स एव भाषेति कथ्यते । भाषायाः युक्तियुक्ता परिभाषा डॉ. भोलानाथतिवारी महोदयेन दत्ता - “भाषा मानवोच्चारणाव्यवहैः उच्चरितानां यादृच्छकध्वनिप्रतीकानां संरचनात्मिका व्यवस्था अस्तियया समाजविशेषस्य जनाः परस्परं विचारविनिमयं कुर्वन्ति” ।

➤ भाषायाः विशेषताः—

1. भाषा एका व्यवस्था वर्तते या अनुकरणेन जायते ।
2. भाषा अर्जितसम्पत्तिरस्ति ।
3. इयं परिवर्तनशीला वर्तते ।
4. भाषा सभ्यतया सह विकासमाप्नोति ।
5. भाषा प्रतिकात्मिकास्ति ।

➤ भाषायाः विविधरूपाणि—

व्यवहारदृष्ट्या भाषायाः विविधरूपाणि वर्तन्ते । तद्यथा -

1. मूलभाषा(Base Language)
2. मातृभाषा (Mother Tongue)
3. प्रदेशिकभाषा (Regional Language)
4. राजभाषा (Official Language)
5. राष्ट्रभाषा (National Language)
6. अन्तराराष्ट्रियभाषा (International Language)
7. शास्त्रीयभाषा (Classical Language)

➤ भाषायाः अङ्गानि—

1. ध्वनिः(Phonological)
2. पदम्(Morphological)
3. वाक्यः(Syntactic)
4. अर्थः(Semantic)
5. लिपिः(Orthographic)

➤ भाषायाः प्रकारः—

प्रयोगस्यदृष्ट्या भाषायाः रूपद्वयमस्ति -

1. लिखितभाषा -- मूलभाषा(Base Language), मातृभाषा (Mother Tongue), लोकव्यवहारस्य भाषा (Dialect), अपभाषा (Slang), विभाषा (Regional Language), प्रदेशिकभाषा (Regional Language), राजभाषा (Official Language), राष्ट्रभाषा (National Language), अन्तराराष्ट्रियभाषा (International Language), शास्त्रीयभाषा (Classical Language), कूटभाषा (Classical Language)
2. मौखिकभाषा ।

आशुनिकभाषाशास्त्रिणः अपि कथयन्ति यत् भाषा सांस्कृतिकनिधिरस्ति या परम्परया प्राप्यते । भूतवर्तमानपौरिष्ठितिष्ठ भाषायाः उच्चारणे, शब्दभण्डारे, शब्दरचनासु च परिवर्तनं दृश्यते तेन भाषायामपि नूनं परिवर्तनं समागच्छत्येव अतः वर्तते भाषा नित्या सततशीला परिवर्तनशीला वा । मानवसभ्यतासंस्कृतयोश्च विकासे भाषा विशिष्टमेव स्थानं भजते अतः भाषायाः कथा सभ्यतायाः कथेति नाम्ना प्रसिद्धास्ति । जनाः श्रत्वा, उक्त्वा, पठित्वा, लिखित्वा च विचाराणामादानप्रदानं कुर्वन्ति । एतासां चतस्राणां योग्यतानां विकासकारणमेव भाषाशिक्षणस्य मुख्यमुद्देश्यं वर्तते । भाषायाः सम्यकज्ञानाय श्रवण-भाषण-पठन-लेखनञ्च परमावश्यकम् । भाषायाः सम्यग्प्रेण प्रयोगकरणमेव भाषाकौशलम् । यतोहि सम्यक श्रवणेन, भाषणेन, पठनेन, लेखनेन च भाषायाः समुचितविकासो भवती । अतः एतानि एव भाषाकौशलानि कथ्यन्ते । प्रायशः प्रत्येकस्याः भाषायाः चत्वारिकौशलानि भवन्ति ।

1. श्रवणकौशलम् (Listening skill)
2. भाषणकौशलम् (Speaking Skill)
3. पठनकौशलम्(Reading Skill)
4. लेखनकौशलम्(Writing Skill)

1. श्रवणकौशलम्—श्रुधातो भवे ल्यूट् श्रवणमिति । अस्मदीया परम्परा श्रुतिपरम्परा इति असकृत् प्रयुज्यमानम् अस्माभिः श्रूयते एव । कस्याश्चिदपि वा लिपे: कल्पनापि यदा नासीत् तदा ज्ञानं वंशश्रैणिः वंशश्रैणिः प्रति श्रवणमाध्यमेन एव सङ्कान्तं

भवति स्म इत्यपि अस्माभिः विदितमेव। भाषायाः ग्रहणं प्रायेण श्रवणेन एव भवति। अतः अस्यां प्रक्रियायां श्रवणेन्द्रियस्य अनितरसाधारणं महत्वमस्ति। जन्मनः प्रभृति श्रोतुमशक्तः बधिरः भाषितुमपि न प्रभवति इत्येषः सर्वेषाम् अनुभवः। शिशोः मातृभाषादिग्रहणप्रक्रियायां सः शिशुः प्रथमशब्दोऽवारणात्पूर्वं कियत्परिमाणकं वाक्यजातं श्रुतवान् भवति इत्येतत् निश्चयेन विस्मयम् आवहति। दैनन्दिनजीवने अस्माभिः बहुः श्रूयते। अस्मान् परितः स्थितैः जनैः क्रियमाणः वार्तालापः, स्तोत्रपाठः, गीयमानानि गीतानि, पद्यानि, आकाशवाणीध्वनिमुद्रणयन्त्र- दूरदर्शनम्- सङ्गणकादीनां द्वारा प्रसार्यमाणाः असंख्याः कार्यक्रमाः चेति सर्वमप्येतत् इच्छृकैः अनिच्छृकैः वा अस्माभिः श्रूयते एव। अयं भाषाधिगमस्य एकः स्वाभाविकः क्रमः वर्तते। श्रवणकौशलम् अन्यकौशलानां विकासस्याधारभमेव। श्रवणकौशलानन्तरमेव बालके पठनलेखनकौशलयोः विकासः कर्तुं शक्यते। वक्ता येनाभिप्रायेणोद्देश्येन वा स्वकीयविचाराणां मौखिकाभिव्यक्तिं करोति तमभिव्यक्तिमवधानपूर्वकं श्रुत्वा तस्मिन्वेबाभिप्राये ग्रहणक्षमतोत्पादनमेव श्रवणकौशलमिति।

➤ श्रवणस्रोतांसि-मानवःस्वजीवने अनौपचारिकरूपेण कुतश्चित् किमपि शृणोति। अनौपचारिकरूपेण यदा कस्याचिद् भाषायाः अर्जनं क्रियते तदा काश्चन गतिविधीनामपि आयोजनं क्रियते। अनौपचारिकरूपेण मानवः कतिपयः स्रोतेभ्यः तस्याः भाषायाः अपि श्रवणं करोति। तेषु स्रोतेषु प्रमुखाः---

1.वार्तालापः2.आदेशः3.निर्देशः4.वार्तापित्रम्5.आकाशवाणी6.संवादः7.विचारविमर्शः8.साक्षात्कारः9.भाषणम् एतेषां सर्वेषां सहाय्येन माध्यमेनवा जनाः उत्तमं श्रवणं कुर्वन्ति।

➤ श्रवणकौशलस्योद्देश्यानि—

1.छात्रेषु वक्तुः मनोभावानाधिगमस्य क्षमतोत्पादनम्।

2.छात्रेषु भाषां साहित्यञ्च प्रति रुच्युत्पादनम्।

3.छात्रेषु श्रुतसामग्र्याः सारांशग्रहणस्य च क्षमतोत्पादनम्।

4.छात्रेषु श्रुतसामग्र्याः अर्थावबोधनस्य योग्यतायाः च विकासकरणम्।

5.छात्रेषु अपरेषां जनानां कथनस्यावधानपूर्वकम् श्रवणस्य प्रकृते: क्षमतोत्पादनम्।

इत्थं वक्तुं जातुं च शक्यते यत् ज्ञानार्जनस्य भावानुभूतेः आत्माभिव्यक्तेश्च प्रवेशद्वारं श्रवणकौशलमिति।

➤ भाषणकौशलम्—

“देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पश्वो वदन्ति।^{vii} भाषाकौशलेषु द्वितीयस्थानं भाषणस्य। सर्वेऽपि मनुष्याः स्वीयम् आशयं प्रकटीकर्तुं भाषन्ते एव। किन्तु शब्दोऽवारणमात्रं भाषणं न इति अस्माभिः ज्ञातमेव। सुसंस्कृते वातावरणे प्रवृद्धानां बालानां मातृभाषायां भाषणकौशलशिक्षणं न कलेशाय। यतः तादृशानां भाषणं स्पृष्टं भवति। तेषाम् उच्चारणं शुद्धं जायते, शब्दसम्पत्तिश्च विपुला जायते। संस्कृतभाषिवातावरणम् अद्यत्वे प्रायः छात्रैः स्वगृहे परिसरे वा नौपलभ्यते इत्यतः सर्वेषामपि संस्कृतच्छात्राणां संस्कृतविषयकश्रवणभाषणकौशलयोः शिक्षणस्यारम्भः विद्यालये एव भवति इति वक्तुं शक्यते। परन्तु तैः किदृशात् परिसरात् आगतम् इत्यवलम्ब्य तेषां भाषणे स्पृष्टता, उच्चारणे शुद्धता वा निर्धार्यते। शब्दसम्पत्तेः निरधारणेषि सः एव अंशः निर्णयिकः भवति। सम्यक् भाषणस्य, शुद्धभाषणस्य विषयेषि विद्वद्जनानाम् अभियुक्तोऽक्तिः प्रसिद्धा संस्कृतजगति – “यद्यपि बहुनाधीषे ग्रन्थ्यान् तथापि पठ पुत्र व्याकरणम्।

स्वजनः श्वजनो मा भूत् सकलं शकलं संकृच्छकृत् ॥” अत्र ग्रन्थकारेण उच्चारणभाषणयोः शुद्धतायाः महत्वं प्रतिपादि।

इत्थमग्रेषि ग्रन्थकाराः प्रतिपादयन्ति – “व्याधी यथा हरेत्पुत्रान्दंष्ट्राभ्यां न च पीडयेत् भीता पतनभेदाभ्यां तद्वद्वर्णन्नियोजयेत् ॥”^{vii} भाषाशिक्षणे प्रथमं सोपानं भवति पदानां साधूच्चारणशिक्षणम्।

➤ भाषाकौशलविकासस्योपायाः—

1. सम्भाषणम्2. कथाकथनम्3. चित्रपठनम्4. नाटकाभिनयः5. भाषाक्रीडा

➤ भाषणकौशलस्य स्रोतांसि—

1. संवादः2. सम्भाषणम्3. प्रश्नोत्तरम्4. चित्रवर्णनम्5. कथाकथनम्6. वादविवादः

7. नाटकाभिनयः8. श्लोकपाठः

➤ भाषणकौशलस्योद्देश्यानि—

1. छात्रेषु स्वतन्त्ररूपेण स्वकीयान् विचारान् प्रकटीकरणस्य क्षमतोत्पादनम्।

2. कुशलवकृताणां निर्माणम्।

3. छात्रान् प्रभावोत्पादकशैल्यामन्यस्साकं वार्तालापकरणस्य योग्यतोत्पादनम्।

4. छात्रान् शुद्धोऽवारणस्य, भावानुगुणं भाषणस्य क्षमतोत्पादनम्।

5. सरलस्पष्टशुद्धशब्दानां भावाभिव्यक्तौ प्रयोगकरणस्य क्षमतोत्पादनम्।

3. पठनकौशलम्—

‘साइकेतिकरूपेण निबद्धानां वर्णनाम् उच्चारणं पठनम्’ इति वक्तुं शक्यते किम् ? ‘न केवलं विषकलितानां वर्णनाम्’ अपितु वर्णैः घटितानां पदानाम् उच्चारणम् इति, ‘तादृशपदघटितानां वाक्यानां वा सुष्टु उच्चारणमेव पठनम्’ इति वा कथयितुं शक्य किम् ? वाक्यस्य वाक्यपुञ्जस्य वा सुष्टुच्चारणमात्रेणापि कश्चन सम्यक पठति इति वक्तुं नैव शक्यम्। यथा तत्र अर्थाविगतिः अपि नितराम् अपेक्षिता एव। तन्नाम पठनक्रियायां साइकेतिकलिपीनां द्वारा तन्निवद्धस्य शब्दस्य साधूच्चारणपूर्वकं तदभिव्यज्यमानस्य अर्थस्यापि ग्रहणं भवति। मनुष्यः अन्येषां विचारान् पठित्वा यदा ग्रहणं करोति तदा तस्य सम्बन्धः दृश्यश्रव्योपकरणसदृशमस्तिष्ठके तिरोहितो भवति, यस्य सम्बन्धः अधिगमेन जायते यथोक्तम्—कैथरीन ओकान्नमहोदयेन “वाचां सा जटिलाधिगमप्रक्रियावर्तते यस्या: दृश्यश्रव्य, गतिवाहिसमूहानाम् भस्तिष्ठकस्य अधिगमकेन्द्रेण सह सम्बन्धो निहितोस्ति इति। उच्चैः वाचनं भवतु, मौनवाचनं वा, वाचकेन अनुसरत्वा: केचन अंशाः सन्ति। त्यक्तव्याः अपि केचन अंशाः सन्ति। पद्यमिदं प्रायः सर्वैरपि संस्कृतशिक्षकैः पठितं पाठितमपि स्यात् –

“गीती शीघ्री शिरः कम्पी यथालिखितपाठकः। अनर्थज्ञोऽल्पकण्ठश्च षडेते पाठकाधमाः॥”^{viii}पाठकस्य दोषाः प्रतिपाद्य क्रमेण पाठकस्य गुणाः अपि पाणिनीयशिक्षायां ग्रन्थकारेण प्रतिपादि – “माध्यैमक्षरव्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वरः। धैर्यं लयसमर्थं च षडेते पाठका गुणाः॥”^{ix}अनयारीत्या पठनकौशले परिष्कारः कर्तुं शक्यते।

➤ पठनस्तोतांसि –

1.पत्रिका२.पत्रम्३.मुख्यवार्ता४. वार्तापत्रम्५.साहित्यम्६.नाटकम्७. कथा८.पाठ्यपुस्तकम्

➤ पठनकौशलस्योद्देश्यानि—1. छात्रेषु शुद्धोद्धारणस्य क्षमतोत्पादनम्२.भावानुरूपपठनस्य क्षमतोत्पादनम्।

3. विरामादि-चिह्नानुसारं कथनानुसारश्च पठनस्यक्षमतोत्पादनम्४. गति-यति-लय-छन्दानुसारं पठनस्य क्षमतोत्पादनम्।
5.आरोहावरोहक्रमेण भावानुकूलं छन्दोनुकूलश्च वाचनस्य क्षमतोत्पादनम्।

4. लेखनकौशलम्—

स्वाभिलिपितस्य अभिप्रायस्य विचारस्य वा प्रकाशनाय लिपिम् आश्रित्य क्रियमाणः अक्षरविन्यासः एव लेखनम् इति पूर्वमेव प्रतिपादितम्।मनुष्यः स्वविचारान् भाषामाध्यमेन प्रकटयति। मनुष्यः कथनेन सह लिखित्वा सङ्केतानां माध्यमेन वा अपि स्वविचारान् प्रकटयितुं शक्नोति।अनैन प्रकारेण भाषायाः त्रीणि स्वरूपाणि स्वीक्रियन्ते—

1. मौखिकीभाषा२. लिखितभाषा३. साङ्केतिकभाषा

उपर्युक्तेषु स्वरूपेषु शिक्षणसमये केवलं कौशलद्वयस्य प्रयोगः भवति- मोखिकं लिखितश्च। लेखनस्य तस्याः भाषायाः लिपिज्ञानमपैक्षितम्। लिपिसन्दर्भे लिखितमस्ति—“भाषायाः ध्वनीनां यासां लेखनचिह्नानां माध्यमेन प्रकटीक्रियते, तां लिपिं वदामः।”प्रत्येकस्याः भाषायाः स्वकीया लिपिः भवति। उदाहरणत्वेन-हिन्दीसंस्कृतयोश्च – देवनागरी, पञ्चाबी इत्यस्य ‘गुरुमुखी’ आडून्लभाषायाः रोमन् लिप्याश्च सन्ति। यदा वयं स्वकीयान् भावान् विचारान् वा लिखितरूपेणभिव्यक्तं कुर्मः तदा वयं त लेखनकौशलमिति वदामः।

➤ लेखनकौशलस्य स्तोतांसि—

1.वर्णः२.शब्दः३.वाक्यसंरचना४.संवादः५.अनुच्छेदः६.कथा७.निबन्धः८.पत्रम्९.वर्णनम्

➤ लेखनकौशलस्य प्रकाराः—

1.अनुलेखनम्२.श्रुतलेखनम्३.प्रतिलेखनम्४.लिप्यन्तरणम्५.अनुच्छेदलेखनम् 6.कथालेखनम्७.पत्रलेखनम्

8.निबन्धलेखन 9.रचना

➤ लेखनकौशलस्योद्देश्यानि—

1. छात्र-छात्राणां कृते वर्णानांसम्यग्गीत्या लेखनस्य क्षमतोत्पादनम्।

2. छात्र-छात्राणां कृते अक्षरविन्यासस्य वर्तन्याः शिक्षाप्रदानम्।

3.छात्र-छात्राभ्यः वाक्यरचनायाः नियमानां ज्ञानप्रदानकरणम्।

4. छात्र-छात्राभ्यःसुन्दरमाकर्षकश्च लेखनस्य क्षमतोत्पादनम्।

5.छात्रेभ्यः स्वकीयान् विचारान् भावान् च तर्कपूर्युक्तिभिः लेखनस्य योग्यतोत्पादनम्।

सन्दर्भ/ पठनीयग्रन्थाः:

लेखकः	ग्रन्थः	प्रकाशनम्
1.डॉ. द्वा उदयशशाङ्कर	संस्कृतशिक्षणम्	चौखम्बा-सुरभारती वाराणसी प्रकाशनवर्ष-2011
2.पाणिनि:	पाणिनीयष्टाष्यायी	रामलालकपूरद्रस्ट
3. डॉ. मित्तलःसन्तोष	संस्कृतशिक्षणम्	नवचेतनापब्लिकेशन्स, जयपुरम्-2006
4.डॉ. दवे दया	संस्कृतशिक्षणे नवविधयः	विनयप्रकाशन जयपुरम्-2010
5.डॉ. शर्मा च.ल.ना.	संस्कृतशिक्षणम्	
6.डॉ. विश्वासः	कौशलबोधिनी	संस्कृतभारती नव देहली-2005
7.डॉ. मित्तलःसन्तोष	भाषाशिक्षणे नवाचारः	नवचेतनापब्लिकेशन्स, जयपुरम्-2006
8.वेदान्तकेशरी गोस्वामी प्रह्लाद गिरि:	पाणिनीयशिक्षा	चौखम्बा संस्कृतसीरीज वाराणसी प्रकाशनवर्ष- वि.सं-2044

(शिक्षाशोधच्छात्रः) राष्ट्रीयसंस्कृतसंस्थानम्, भोपालपरिसरःभोपालम्

पादित्प्रयाः

ⁱ शास्त्रीजगदीशः (सम्पादितम्-1970 ई.)- 'उपनिषत्संग्रहः प्रथमोभागः' बृहदारण्यकोपनिषद् चतुर्थोऽध्यायः, पृ. सं.-111, प्रथमसंस्करणम्।

ⁱⁱ पा. अ. - 3/3/102

ⁱⁱⁱ आचार्यदण्डी(प्रथमसंस्करणम्) काव्यादशीः, परिच्छेदः-1, श्लोकः-3

^{iv} तत्रैव परिच्छेदः -1, श्लोकः-4

^v भर्तृहरि-वाक्यपदीयम्, ब्रह्मकाण्डम्-1, श्लोकः-124.

^{vi} ऋग्वेदः- 4 मण्डलः, 58 सूक्तम्, 6 मन्त्रः

^{vii} पाणिनीयशिक्षा- श्लोकः-25

^{viii} पाणिनीयशिक्षा-श्लोकः-32

^{ix} तत्रैव श्लोकः-3